ISSN 2582-0885

स्रवंति

मासिक पत्रिका

मार्च : 2023

मूल्य : ₹ 15/-

ప్రవంతి

మాసపత్రిక

మార్చి : 2023

వెల : ₹ 15/-

विश्व हिंदी सम्मेलन : फिजी, फरवरी 2023

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा

(Provincial Branch of Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras)

(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)

खैरताबाद, हैदराबाद - 500 004, फोन - 040-23316865

Email : dbhpsandhra@yahoo.co.in Website : www.dbhpsapts.com

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, आंध्र तथा तेलंगाना
कविता पाठ प्रतियोगिता 'काव्य लहरी' : 04.03.2023

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, आंध्र तथा तेलंगाना
बी.एड. महाविद्यालय, विजयवाडा : अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस : 8 मार्च, 2023

स्रवंति

मासिक पत्रिका

मार्च, 2023

ISSN : 2582-0885

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित

वर्ष 67 अंक 12

संपादक
जी. सेल्वराजन

सचिव (प्रभारी)
ए. जानकी

सह संपादक
डॉ. जी. नीरजा
neerajagurramkonda@gmail.com

मूल्य : ₹ 15/-

वार्षिक शुल्क : ₹ 150/-

dbhpsandhra@yahoo.co.in

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा
(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)
खैरताबाद, हैदराबाद - 500 004.
फोन : 040-23316865
website : dbhpsapts.com

संपादकीय

✱ मृत्यु जीवन का परम विकास : महादेवी वर्मा		4

विरासत

✱ होली (कविता)	भारतेंदु हरिश्चंद्र	31
✱ मेहमानों की दुनिया (ललित निबंध का अंश)	रामअवध शास्त्री	34

मध्यांतर

✱ वेणुगोपाल की कविताएँ		19

स्मरण में है आज जीवन : 10

✱ अंबादास देशमुख : याद तेरी कहाँ न थी ...	दिलीप सिंह	7

आलेख

✱ दक्षिण अफ्रीका में हिंदी की दशा औद दिशा	गोपाल शर्मा	13
✱ हमारा संविधान	नन्दकिशोर साह	23
✱ भारतीय साहित्य : चिंतन और चुनौतियाँ	आलोक पाण्डेय	26

व्यंग्य

✱ निमंत्रण-पत्र न बुलाने का	सीताराम गुप्ता	32

परीक्षोपयोगी

✱ वस्तुनिष्ठ प्रश्न : हिंदी साहित्य का इतिहास		36
गतिविधियाँ		37
पाठकीय		25

'स्रवंति' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार स्वयं उनके हैं। अतः संपादक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय...

मृत्यु जीवन का परम विकास : महादेवी वर्मा

हिंदी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्री महादेवी वर्मा छायावाद के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। 24 मार्च, 1907 को उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में जन्मी महादेवी श्री गोविंद प्रसाद वर्मा और श्रीमती हेमरानी देवी की पहली संतान थीं। वे बचपन से ही चित्रकला, संगीतकला तथा काव्यकला में विशेष रुचि रखती थीं। माता-पिता के प्रभाव से बचपन से ही महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व निर्माण होने लगा।

महादेवी की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, सप्तपर्णा, प्रथम आयाम, अग्निरेखा, आत्मिका, परिक्रमा, सन्धिनी, यामा, गीतपर्व, दीपगीत, स्मारिका और नीलांबरा। उनके गद्य साहित्य में अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ (रेखाचित्र), पथ के साथी, मेरा परिवार (संस्मरण), शृंखला की कड़ियाँ (विवेचनात्मक गद्य), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, संकल्पिता (निबंध), क्षणदा (ललित निबंध), गिल्लू (कहानी) आदि उल्लेखनीय हैं। ठाकुरजी भोले हैं और आज खरीदेंगे हम ज्वाला महादेवी वर्मा की बाल कविताओं के संग्रह हैं।

महादेवी वर्मा को गंगा प्रसाद पांडेय ने हिमालय से तुलना करके 'महीयसी' कहा तो कुछ विद्वानों ने आधुनिक मीरा कहा। शिवमंगल सिंह सुमन ने अप्रतिहत आराधना की अमर ज्योति कहकर संबोधित किया। निराला के शब्दों में कहें तो महादेवी वर्मा 'हिंदी के विशाल मंदिर की सरस्वती' हैं। जब एक साक्षात्कार में विजयानंद ने उनसे पूछा कि आलोचक उन्हें मीरा के साथ जोड़कर देखते हैं तो उत्तर में उन्होंने कहा कि यह तो आलोचकों की कृपा है। 'वैसे मध्यकालीन युग में मीरा ही ऐसी कवयित्री थी जिसमें नारी का अंतर्विद्रोह झलका है। मैं इसलिए स्वयं मीरा को बहुत ही श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ। मेरे काव्य में भी उनकी पूज्य भावना प्रधान है। अपनी स्मृति में उसकी छाया से ही सुख का अनुभव कर लेती हूँ। उनकी स्मृति छाया मुझे सचमुच पवित्र कर देती है। उस विद्रोही नारी की त्याग भावना आज भी मुझे प्रेरणा देती है।'

जब एक बार महादेवी से यह पूछा गया कि साहित्य के क्षेत्र में वे कैसे आईं तो उन्होंने बताया कि उनका जन्म फर्रुखाबाद में हुआ जो निश्चित ही साहित्य चर्चा के लिए नगण्य स्थान था। पिताजी की ओर से ज्यादा सहयोग न मिलने के बावजूद माँ की प्रेरणा से वे इस ओर आगे बढ़ीं इलाहाबाद में एम.ए. किया तो उस समय साहित्यिक वातावरण प्राप्त हुआ।

महादेवी वर्मा ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा था और स्वतंत्रता के बाद का भारत भी। इसलिए उनके साहित्य में जो वेदना मुखरित है वह वैयक्तिक न होकर, वैश्विक है। इसीलिए वे कहती हैं कि 'प्रिय ! जिसने दुख पाला हो/ वर दो यह मेरा आँसू/ उसके उर की माला हो', 'आँसू का मोल न लूँगी मैं',

'मेरे छोटे से जीवन में देना न तृप्ति का कण भर/ रहने दो प्यासी आँखों को भरतीं आँसू के सागर।' जब वे कहती हैं- 'मैं नीर भरी दुःख की बदली!/ स्पंदन में चिर निस्पंद बसा,/ क्रंदन में आहत विश्व हँसा,/ नयनों में दीपक से जलते,/ पलकों में निर्झरिणी मचली!' तो उनकी वैश्विक दृष्टि ही सामने आती है।

महादेवी वर्मा ने अपनी भावनाओं एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए कविता को माध्यम बनाया। उनकी कविता का मुख्य स्वर आध्यात्मिकता और रहस्यवाद है। 'नीहार' में संग्रहीत यह गीत इसका श्रेष्ठ उदाहरण है- 'गये तब से कितने युग बीत/ हुए कितने दीपक निर्वाण!/ नहीं पर मैंने पाया सीख/ तुम्हारा सा मनमोहन गान।/ ... नहीं अब गाया जाता देव!/ थकी अँगुली हैं ढीले तार/ विश्ववीणा में अपनी आज/ मिला लो यह अस्फुट झंकार!'

महादेवी वर्मा बचपन से ही विद्रोही स्वभाव की थीं। वे वही करती थीं जो वे उपयुक्त और सही समझती थीं गंगा प्रसाद पांडेय का कथन है कि 'संसार का कोई प्रलोभन उन्हें अपने पथ से विमुख नहीं कर सका' - 'न पथ रूँधतीं ये/ गगन तम शिलायें,/ न गति रोक पातीं/ पिघल मिल दिशायें;/ चली मुक्त मैं ज्यों मलय की मधुर वात!/ घिरती रहे रात !/ न आँसू गिने औ',/ न काँटे सँजोये,/ न पग-चाप दिग्भ्रांत;/ उच्छवास खोये;/ मुझे भेंटता हर पलक-प्रात में प्रात !/ घिरती रहे रात!' वे यह कहने में संकोच नहीं करतीं कि 'मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था। कविता सबसे बड़ा परिग्रह है, क्योंकि वह विश्व-मात्र के स्नेह की स्वीकृति है।'

महादेवी वर्मा का सोच सकारात्मक सोच है। सुख-दुख को लेकर लोगों में पूर्वग्रह होते हैं। सुख को सकारात्मक और दुख को नकारात्मक मानते हैं। लेकिन महादेवी के लिए ऐसा पूर्वग्रह नहीं है। वे कहती हैं- 'किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,/ हैं एक मुझे मधुमय विषमय;/ मेरे पद छूते ही होते,/ काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय!' यह जीवन क्षणभंगुर है। सुख-दुख, हर्ष-विषाद, जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहता है। किसी एक स्थिति में रह ही नहीं सकते। दुख के बाद सुख का आना, अँधेरे के बाद उजाले का आना, रात के बाद दिन का आना निश्चित है। अतः महादेवी कहती हैं कि 'विकसते मुरझाने को फूल/ उदय होता छिपने को चाँद/ शून्य होने को भरते मेघ/ दीप जलता होने को मंद/ यहाँ किसका अनंत यौवन?/ अरे अस्थिर छोटे जीवन!' यदि मनुष्य इस रहस्य को जान जाए तो कहना ही क्या? लेकिन यह सब जानते हुए भी जीवन विकास की प्रक्रिया में वह इस तरह डूबा है कि दुख व पीड़ा की स्थितियाँ ही नज़र आने लगती हैं। सुख के वे पल आँखों से ओझल हो जाते हैं। महादेवी कहती हैं, 'सुख से विरक्त दुख में समान' रहने वाला व्यक्ति कभी भी निराश नहीं हो सकता। वे हर स्थिति में मधुरता को महसूस करती हैं ('जीवन सुख-दुखमय मधुर गान'), संगीत खोज लेती हैं ('मेरा पग पग संगीत भरा')। वे यह भी कहती हैं कि जीवन को

उर्वर बनाने के लिए दुख आवश्यक है - 'दुख के पद छू बहते झर झर,/ कण कण से आँसू के निर्झर,/ हो उठता जीवन मृदु उर्वर,/ लघु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता।'

महादेवी वर्मा जब कहती हैं, 'दीप मेरे जल अकंपित घुल अचंचल/ पथ न भूले, एक पग भी, घर न खोये, लघु विहग भी/ स्निग्ध लौ की तूलिका से आँक सबकी छाँह उज्ज्वल' तो लोक मंगल की भावना दिखाई देती है। वे इस नश्वर संसार से क्लेश, विषाद आदि को दूर करना चाहती हैं। वे मुरझाए फूलों पर संध्या के रंग जमाना चाहती हैं। पथ के संगी शूलों के सौरभ के पंख लगाना चाहती हैं। अपने को गलाकर पृथ्वी को शीतलता देने वाले घन के हर कंपन पर शत-शत निर्वाण लुटाना चाहती हैं। करुणा का अक्षय जलस्रोत सँजोना चाहती हैं। आत्मविश्वास के साथ महादेवी कहती हैं, 'विद्युत घन में बुझने आती,/ ज्वाला सागर में घुल जाती,/ मैं अपने आँसू में बुझ-घुल,/ देती आलोक विशेष रही।/ जो ज्वारों में पल कर, न बहें,/ अंगार चुगें जलजात रहें,/ मैं गत-आगत के चिर संगी/ सपनों का कर उन्मेष रही!'

महादेवी के अनुसार मृत्यु के कारण ही जीवन का विकास होता है - 'अमरता है जीवन का ह्रास,/ मृत्यु जीवन का परम विकास।/ दूर है अपना लक्ष्य महान,/ एक जीवन पग एक समान।। महादेवी वर्मा की कविताओं में जीवन की हर अनुभूति समाहित है। उनकी कविता के संदर्भ में इलाचंद्र जोशी का यह कथन उल्लेखनीय हैं - 'महादेवी जी की एक-एक कविता, एक-एक गीत केवल अपने-आप में अनमोल मोती नहीं है, वरन् वह एक-एक मोती अपने-आप में अनेक अनमोल मोतियों को छिपाए है। और उनमें से प्रत्येक मोती को मोती बनने में जिन अपार साधनाओं और बाधाओं का सामना करना पड़ा है, उनकी व्याख्या किसी भी हालत में सहज-साधारण नहीं है। किसी भी सीप की मोती बनने की प्रक्रिया साधारण नहीं होती, फिर महादेवी के मानस के मोती तो साहित्य-संसार में दुर्लभतम और अमूल्य निधि हैं - उनकी प्रक्रिया और भी जटिल है- उनके लिए केवल स्वाति-नक्षत्र की ही आवश्यकता नहीं है।' (इलाचंद्र जोशी, भूमिका, महीयसी महादेवी, पृ. 6-7)।

महादेवी की कविताओं में विस्मय, जिज्ञासा, दुख और आध्यात्मिकता के भाव मिलते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी कविताओं में सुख, हर्ष और उल्लास उपेक्षित हैं। जीवन के तमाम रंग उनकी कविताओं में मुखरित हैं। 'महादेवी का दुखवाद निराशा या अकर्मण्यता का व्यंजक नहीं है। उन्होंने दुख को केवल व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ में स्वीकार किया है, सामाजिक जीवन के प्रसंग में तो वे अथक और अमर साधना में विश्वास करती हैं। उनका दुखवाद किसी सीमा तक समाज-कल्याण की भावना में संपृक्त है।' (सं. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 538)।

(सह संपादक)

अंबादास देशमुख
याद तेरी कहाँ न थी, दर्द तेरा कहाँ न था

- दिलीप सिंह

प्रो. अंबादास देशमुख, मेरे जानने वालों में सबसे अलग थे। उनके भीतर मानवीयता के कई गुण एक साथ समाए हुए थे- कुटे-पिसे। ईमानदारी, कर्मठता, नम्रता और निराभिमानता की वे तस्वीर थे। निराडंबर तो वे हर कहीं से थे। मैं जब भी उनसे मिलता था तो महसूस करता था कि ईश्वर ने उनकी तरह का मुझे भी क्यों नहीं बनाया। पर उनकी तरह का बन पाना इतना आसान नहीं है। केवल अंबादास ही अंबादास बन सकता है, और कोई नहीं।

अंबादास जी कोई आवरण नहीं ओढ़ते थे। जैसे थे वैसे ही दिखते थे - एकदम गाँव-गिराँव के अति साधारण मनुष्य। उनकी यह सादगी मुझे बरबस अपनी ओर खींचती थी। वह अंतर्मुखी और मितभाषी थे। उनसे कुछ बुलवाने के लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। एक बार पुणे में हम दोनों साथ थे। वे मेरे कमरे में आए और नमस्कार करके बैठ गए। मैंने यथायोग्य के प्रश्न पूछे, उन्होंने एकल वाक्यीय उत्तर दिए। फिर इधर चुप, उधर चुप। मैंने दूसरे दिन की संगोष्ठी की बात छेड़ी तब जाकर संक्षिप्त वार्तालाप हो सका।

अंबादास जी लंबी और छरहरी काया के मालिक थे। एकदम पतली सी मूँछ रखते थे। केश काले थे। चेहरा साधारण और रंग दबा हुआ था। अधिकतर गंभीर ही रहते रहे। कभी-कभार ही हल्के-से मुस्कुराते थे। आगे चलकर मैंने उन्हें 'खोलने' की कुंजी पा ली थी। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा पर चर्चा छेड़ते ही उनका अंतर करवटें लेने लगता था। मैंने भी केंद्रीय हिंदी संस्थान में काम किया था और उसके पूरे विकास-क्रम से परिचित था। बात जमने लगी। इस तरह सी.एच.आई. हमारी निकटता और आत्मीयता को चार चाँद लगाने वाला उपकरण बना। वे हमेशा सफारी सूट ही पहनते थे, प्रायः झकाझक सफेद रंग का। उनके लंबे और संतुलित शरीर पर ये जँचते भी बहुत थे।

मैं उनसे पहली बार कब मिला? शायद हैदराबाद में पहली भेंट हुई थी। 'संस्थान' में पुनश्चर्या पाठ्यक्रम चल रहा था। तभी उनकी पुस्तक आई थी - **भाषाविज्ञान तथा हिंदी भाषा का इतिहास**। डॉ. विजयराघव रेड्डी ने हम दोनों का परिचय कराया। बाद में मैंने जाना कि दोनों एक-दूसरे के अभिन्न थे। उन्हीं दिनों अपनी यह पुस्तक उन्होंने मुझे भेंट की थी। सारगर्भित पुस्तक थी- सरल और सुंदर। उनकी

एक और बात मुझे बहुत प्रेरक लगती थी। जहाँ-जहाँ भी गोष्ठियों, नवीकरण पाठ्यक्रमों में साथ रहे, वे सभी विद्वानों के व्याख्यानों में एक विद्यार्थी की तरह आकर बैठ जाते थे। सीखने, जानने, समझने की उनमें अजीब सी लगन थी। मराठवाड़ा विश्वविद्यालय में मेरा व्याख्यान था - शैलीविज्ञान पर। वे आकर आगे की पंक्ति में बैठ गए। तब वे हिंदी विभागाध्यक्ष थे। व्याख्यान के बाद अपने कक्ष में ले गए। चाय पीते-पीते मैंने उनसे कहा कि - देशमुख जी आप इतनी देर तक मेरे लेक्चर में आकर बैठे, धन्यवाद। काम का तो बहुत हर्ज हुआ होगा। उन्होंने जवाब दिया- अध्यापक को सुनना भी चाहिए। आप लोग नया-नया सब पढ़ते हैं, सीखने को मिल जाता है। उनकी ऐसी निश्छल बातें याद आती हैं तो दिल कराह उठता है।

धीरे-धीरे मुझे यह भान हो गया था कि वे उन व्यक्तियों में से हैं जो बोलता कम है और करता ज्यादा है। कितना काम किया उन्होंने। किसी एक व्यक्ति के बूते का नहीं है। इतनी और ऐसी श्रेष्ठ रचनात्मकता कि मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि वे भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा के एकनिष्ठ सेवक थे। मैंने उन्हें व्यक्तिगत स्तर पर उतना नहीं जाना है जितना उनके लेखन के माध्यम से। वे मुझसे दूर रहकर भी, मेरे अति निकट रहने वाले मित्र थे।

कृषक परिवार में उनका जन्म हुआ था। परिवार में शिक्षा का प्रसार नहीं था। चाहते तो खेती-बारी से अपना जीवन चला सकते थे। शिक्षा की ओर मुड़े भी तो अपनी अलग ही राह पकड़ ली। भाषाविज्ञान के रास्ते चल पड़े। मैंने महाराष्ट्र ही क्या, भारत भर के विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में किसी अध्यापक को भाषाविज्ञान के प्रति इतना समर्पित नहीं पाया। भाषाविज्ञान उनके लिए - एक भरोसा, एक बल, एक आस बिसवास बन चुका था। वे इसमें डूब चुके थे। अपने इस विलक्षण मिजाज के कारण ही वे मुझे भोलानाथ तिवारी और कैलाश चंद्र भाटिया की परंपरा के भाषाविद् लगते थे। सरल और सुबोध भाषाविज्ञान की रचना करने वाले। भाषाविज्ञान में उनकी यह रति मुझे अतिशय प्रभावित करती थी। एक बार मैंने उनसे पूछा भी था कि यह सब कैसे हुआ? आपने साहित्य की राह क्यों नहीं पकड़ी। कहने लगे कि, मैं महाराष्ट्र में भाषाविज्ञान पढ़ाता था तो रुचि जागती रही। उनके लंबे आगरा प्रवास में उन्हें आधुनिक भाषाविज्ञान की दीक्षा मिली। वे 'हिंदी शिक्षण निष्णात' करने गए थे केंद्रीय हिंदी संस्थान। कभी सोचता हूँ कि कैसी लगन रही होगी उनकी। वे बताते थे कि संस्थान में उन्हें किसने-किसने पढ़ाया था। डॉ. आयंगार, न.वी. राजगोपालन, सुरेश कुमार, रमानाथ सहाय, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव...। मैं 'संस्थान' में काम कर चुका था। इन सभी को निकट से जानता था, तो स्वाभाविक था कि ये नाम मेरी और अंबादास जी की बातचीत का मुख्य विषय होते। इन सबने मिलकर हमारी नज़दीकियाँ कई गुना बढ़ा दी थीं।

मेरा वे आदर करते थे। बहुत आदर। मुझसे दो वर्ष बड़े थे, पर अग्रज मानते थे। और मैं उन्हें

अपना सुहृद मित्र। धीरे-धीरे हमारी आत्मीयता इतनी बढ़ गई थी कि वे बोलते कम थे, मैं समझता अधिक था। मैं उनसे मजाक में कहता था कि - हम दोनों भाषाविज्ञानी मित्र हैं। वे मुस्कुरा भर देते। वे लिखते रहे, मैं उनका लिखा पढ़ता रहा। कभी वे मिलते तो अपनी कोई नई किताब भेंट करते। कोई नई पुस्तक छपते ही मुझे भिजवाते। फोन पर भी हम किताबों की ही बातें करते। मैं उनका मुरीद बन गया था उनकी पुस्तक **प्रयोजनमूलक तथा व्यवहारिक हिंदी** (1999) देखकर। मैं औरंगाबाद (मराठवाड़ा विश्वविद्यालय) उनके वहाँ पहुँचने के पहले भी जाया करता था। उन्होंने मुझे बुलाया था, वहाँ पहुँचते ही। वे प्रयोजनमूलक हिंदी पर एक गोष्ठी कर रहे थे। विभागाध्यक्ष बनने के बाद उन्होंने शैलीविज्ञान पर एक गोष्ठी की थी। इसमें भी मुझे बुलाया, 'बीज वक्तव्य' दिलवाया। खुद मेरे लेक्चर में आकर बैठे।

महाराष्ट्र के दूर-दराज के हिंदी अध्यापकों और हिंदी प्रेमियों से मेरा परिचय उन्होंने ही करवाया। वैसे महाराष्ट्र मेरे लिए अपरिचित नहीं था। बंबई, पुणे, कोल्हापुर, औरंगाबाद, नागपुर के विश्वविद्यालयों में मेरा आना-जाना था, पुराने संबंध थे। पर महाराष्ट्र की जड़ों से मुझे अंबादास जी ने ही जोड़ा। नांदेड और लातूर को मेरा आत्मीय बनाया। पैठण, उमरगा, नलदुर्ग, परमणी, जालना, पाटोदा, पायंदा, तुलजापुर के कॉलेजों के युवा और प्रतिभाशाली हिंदी अध्यापकों को मेरे निकट लाए। सच कहूँ तो इन जगहों के तो मैं नाम तक नहीं जानता था। अंबादास जी ने लातूर में एक संस्था स्थापित की थी- संत कबीर प्रतिष्ठान। उनके सभी विद्यार्थी और मित्र इससे संबद्ध थे, और आज भी हैं। इसी संस्था की ओर से उन्होंने मुझे एक बार लातूर बुलाया था। भव्य कार्यक्रम था। इसी कार्यक्रम में उनकी दो सद्यः प्रकाशित पुस्तकों का विमोचन भी हुआ था। दोनों पुस्तकें एक साथ आई थीं, 2017 में **अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार** तथा **हिंदी भाषा : प्रमुख प्रकार्य**। दोनों पुस्तकों पर मुझे बोलना था। मंच पर उस क्षेत्र के कई गणमान्य महानुभाव उपस्थित थे। अंबादास जी भी अपने सफेद सफारी सूट में विराजमान थे। वे मुझे पहले से कमजोर लग रहे थे। बीच में अस्वस्थ हुए थे, शायद उसी का असर हो। मुझे खुद लेने आए थे। जहाँ ठहराया था वहाँ तक साथ आए। सब प्रबंध देखा और थोड़ी-सी बात करके चले गए। मेरी पत्नी मेरे साथ गई थीं। प्रसन्न हो गए। पहले सत्र के बाद भोजन एक बड़े हॉल में था। बार-बार आकर मुझे पूछ जाते थे। उनकी ये छोटी-छोटी बातें दिल को छू जाती थीं, और उनके जाने के बाद कचोटती हैं।

आज भी मैं 'संत कबीर प्रतिष्ठान' के व्हाट्सएप ग्रुप से जुड़ा हूँ। ढेरों खबरें मिलती हैं- साहित्यिक गतिविधियों की। रणजीत जाधव, विजय कुमार रोडे, राजेश विभूते आदि-आदि से इस 'ग्रुप' पर भेंट हो जाती है। अंबादास जी के शिष्य भी खूब लिखते-पढ़ते हैं। यह उन्हीं का दिया हुआ संस्कार है। ये सभी अध्यापक पुस्तकें छपवाते हैं, संपादित करते हैं, व्याख्यानमालाएँ चलाते हैं...। रोज मैं 'संत कबीर प्रतिष्ठान' का व्हाट्सएप खोलता हूँ और सवेरे-सवेरे अंबादास जी की यादों में खो जाता हूँ। इस माध्यम से

वे रोज़-रोज़ मेरे दिल में आ विराजते हैं। उस मनभावन दोस्त की तरह जो बड़ी सहजता से अपने इस मित्र के पास चला आता है। अपनी ही बनाई संस्था के जरिए। अपने आत्मीय शिष्यों को लिए दिए, जो उन्हें पितातुल्य मानते रहे हैं। मानते हैं।

इन दोनों किताबों की तैयारी के समय वे जब मिलते बात करते। पढ़ना और लिखना ही उनका व्यसन था। एक बार संभवतः वर्धा में वे मुझसे अनुवाद चिंतक भाषावैज्ञानिकों कैटफर्ड और न्यूमार्क की संकल्पनाओं पर जिज्ञासाएँ व्यक्त कर रहे थे। उन्होंने प्रो. श्रीवास्तव की पुस्तक **अनुवादः सिद्धांत और समस्याएँ** तथा सुरेश कुमार की पुस्तक **अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा** पढ़ रखी थी। अन्य कुछ पुस्तकें भी उनकी जद में थीं। इन्हीं दोनों पुस्तकों के प्रकाश में चर्चा हो रही थी। तब मैंने जाना कि वे कितना पढ़ते हैं और किस तरह सोचते हैं। इसका अंदाजा इस बात से भी लगता है कि उनकी सभी पुस्तकों में देश-विदेश के भाषाविदों के उद्धरण और उनकी सटीक व्याख्या हमें मिल जाती है।

हमारी एक मुलाकात मुंबई में भी हुई थी। दो दिन का साथ रहा था। वे मेरी पुस्तक **'पाठ-विश्लेषण'** पढ़ चुके थे। तभी उन्होंने बताया था कि उन्हें आगरे में शैलीविज्ञान डॉ. सुरेश कुमार पढ़ाते थे और कभी-कभी दिल्ली से प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव भी आते थे। सुरेश कुमार जी की **'प्रेमचंद की भाषा'** पुस्तक अंबादास को बेहद पसंद थी। प्रेमचंद उनके प्रिय रचनाकार भी थे। इसी बातचीत के दौरान जब मैंने श्रीवास्तव जी के साथ अपने संबंध (वे मेरे बड़े बहनोई थे) अंबादास जी पर जाहिर किए तो उन्हें विश्वास ही नहीं आ रहा था। फिर आहिस्ता से बोले, आपकी किताब पढ़कर मैं सोच रहा था कि इतनी गंभीरता और गहनता आपके लेखन में कहाँ से आई है। मैंने विनम्र होकर बस इतना ही कहा- यह प्रो. श्रीवास्तव का ही आशीर्वाद है। फिर वे रह-रहकर प्रो. श्रीवास्तव की शिक्षण-पद्धति की बारीकियाँ मुझे बताते रहे। इस तरह की बातें करते समय वे संयमित ढंग से आनंदित भी होते थे। वे मेरी सभी पुस्तकें और लेखादि यथावसर पढ़ते थे। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान पर मेरा एक लेख 'भाषा' में पढ़कर उन्होंने मुझे फोन करके बधाई दी थी। बधाई देने का काम वे पूरे उछाह के साथ करते थे।

विजय राघव रेड्डी से मिलने पर अंबादास जी का जिक्र आ ही जाता था। रेड्डी जी ने भी उन्हें आगरे में पढ़ाया था। वे बताते थे कि डॉ. देशमुख कक्षा में चुप ही रहते थे। बहुत संकोची थे, मैंने ही उनका धड़का खोला। रेड्डी जी ने अपना स्नेह देकर अंबादास जी के व्यक्तित्व को एक चमक दे दी थी। उनका यह उपकार अंबादास जी खुले दिल से मानते थे। कहते भी थे। रेड्डी दंपत्ति ने एक अनजाने परिवेश में अंबादास जी को पारिवारिक वातावरण दिया था। बाद में इस बात के लिए मैं डॉ. रेड्डी के मुँह पर उनकी प्रशंसा करता था। डॉ. रेड्डी ने ही मुझसे प्रो. अंबादास देशमुख के व्यक्तिगत जीवन के कई पन्ने खोले थे। इन

पन्नों ने अब मुझे ही नहीं मेरे मन को भी अंबादास जी के मोहपाश में जकड़ दिया था। जबकि उन्हें यह कभी भी पता नहीं चला कि मैं उनके जीवन की आपाधापी से वाक़िफ हूँ।

मुझे अच्छी तरह याद है कि उनकी तीन पुस्तकें एक के बाद एक आई थीं। मैं चेन्नई में था। मुझे डाक से मिलती रहीं। **प्रयोजनमूलक हिंदी के अधुनातन आयाम** (2006), **भाषाविज्ञान के अधुनातन आयाम और हिंदी भाषा** (2007) तथा भाषाशिक्षण (2008)। ये तीनों पुस्तकें भाषाविज्ञान में उनके क्रमशः प्रौढ़ होते जाने की गवाह हैं। वे अवकाश प्राप्त कर चुके थे। चेन्नई में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की व्याकरण और प्रयोजनमूलक हिंदी की पुस्तकों का संशोधन होना था। मुझे डॉ. रेड्डी और अंबादास जी को साथ-साथ बुलाने का मौका मिल गया। दोनों आए। पाँच दिन का काम चार दिन में पूरा हो गया। दोनों विषय-निष्णात थे, हिंदीतर भाषी हिंदी छात्रों की समस्याओं को समझते थे तथा 'व्याकरण' और 'भाषा की प्रयोजनीयता' में आए नए मोड़ों से परिचित थे। वे चार दिन बहुत अच्छे बीते। पर ये दोनों 'कर्मवीर' देर शाम तक काम में लगे रहते। पाँचवें दिन जाकर हम तीनों घूमने-फिरने निकले। अंबादास जी को 'मरीना बीच' ने मोह लिया था। इस सान्निध्य में मुझ पर इन दोनों के कई-कई राज़ खुले। ये दिन बहुत खुशनुमा बीते।

अंबादास जी को प्रसिद्धि भी मिली और सम्मान भी। उनके नाम-काम की सुरभि श्रीवास्तव, सुरेश कुमार, भाटिया जी तक पहुँच चुकी थी। हिंदी भाषाविज्ञान के क्षेत्र में वे एक समर्थ भाषा अध्येता के रूप में स्वीकार्य हो चुके थे। यही तो थी उनकी आकांक्षा। लातूर में अपनी दो पुस्तकों के विमोचन के समय बोलते समय उन्होंने कहा था कि उनकी पुस्तकों की सराहना में जब उन्हें कैलाशचंद्र भाटिया, सुरेश कुमार, विजय राघव रेड्डी या दिलीप सिंह का पत्र या फोन मिलता है तो उन्हें अपने परिश्रम का मूल्य मिल जाता है। यह सब पाने के बाद भी वे बहके नहीं। अहंकार की एक लकीर भी उन्हें छू न सकी। बल्कि वे एक फलदार वृक्ष की भाँति नमित होते चले गए।

विद्यार्थियों पर उनकी स्नेह वर्षा और भी सघन होती गई। मुझ जैसों के साथ वे अधिकाधिक नम होते चले गए। उनके व्यवहार में एक अबोला आकर्षण था। अपने काम में रमे हुए संत जैसा आकर्षण। विरल और अविश्वसनीय। मुझे तो वे अपने इसी रूप में सबसे ज्यादा याद आते हैं और अपने जैसा बनने को उकसा जाते हैं। मेरे मानस पर उनकी यादों की कितनी-कितनी परतें जमी हुई हैं कि क्या कहूँ। वे एकदम सीधा और साफ़ बोलते थे। फालतू का एक शब्द नहीं। संयम कि वे मूर्ति थे - वाणी का संयम, विषय का संयम, लेखन का संयम और मानवीय व्यवहार का संयम। संयम के वे साधक थे। मैं उन्हें जब से जानता था, तब से आखीर तक वे वैसे ही बने रहे। वे विभागाध्यक्ष थे, भाषाविज्ञान के प्रखर अध्येता थे,

इतने सारे लोग उनके भक्त थे, पर वे इन सबसे निःस्पृह रह कर सदा 'साधारण' बने रहे। सच जानिए, मेरी नज़र में यह साधारणता ही उनका अलंकरण थी। इस दुर्लभ अहंकार ने उनके पूरे व्यक्तित्व को मनोहरता से भर दिया था।

मुझे निःसंदेह यह अहसास होता है कि उनकी यही साधारणता उनके लेखन में भी उतर आई थी। वे 'असाधारण' लिखते थे पर साधारण रूप और शैली में । नितांत पठनीय और संप्रेषणीय। भाषावैज्ञानिक लेखन में ऐसा कर पाना सामान्यतः दुःसाध्य होता है। भाषाविज्ञान जैसे एक जटिल विषय को जटिल भाषा संरचना और गुँफित शैली में प्रस्तुत कर देना बहुत कठिन नहीं होता पर उसे सरल, सुबोध और ग्रहणीय रूप में पाठकों के समक्ष लाने के लिए विषय को आत्मसात करना, उसे पचा लेना आवश्यक होता है। अंबादास जी की सभी पुस्तकों में उनका यह आत्मसातीकरण स्पष्ट झलकता है। वे विषय-संदर्भ और संकल्पनाओं को खोलने का यत्न करते हैं। स्पष्टता को सिद्ध करने के लिए उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अपनी बात साफ-साफ कहे बिना वे मानते नहीं। जबकि उनके कई समकालीन भाषाविदों के लेखन में उदाहरणों की अल्पता कभी-कभी तो खलने लगती है। मैंने लेखन में इस प्रवाह का रहस्य जानना चाहा तो उन्होंने कहा था- मैं जब लिखता हूँ तो मेरे सामने मेरे विद्यार्थी होते हैं। इन छात्रों के भीतर मैं हिंदी भाषा की शक्ति का एहसास कराना चाहता हूँ। कठिन हिंदी लिखना तो मैं जानता भी नहीं। सच, वे सहज हिंदी के पक्षधर थे। सजी-धजी हिंदी में न तो वे बोलते थे, न ही लिखते थे।

आप खुद ही देखिए, कितनी साफगोई के साथ उन्होंने यह बात कही थी। उनकी इसी अच्छाई और ईमानदारी का मैं कायल था। इतना कि वे जो भी कहते, मैं मान लेता था। इसे वे मेरी सज्जनता समझते थे, और मैं उनकी इंसानी ताकत का परिणाम मानता था। जो भी हो, उन्होंने अपनी लगन से हिंदी भाषा को पुष्ट और संपन्न किया है। भाषाविज्ञान के अधुनातन पक्षों को छूने और सहेजने का काम किया है। उनकी सभी किताबें मेरे पास हैं जो मेरे लिए अब एक ऐसा आईना बन चुकी हैं जिनमें वे मुझे साफ नज़र आते हैं। दर्द की कोई रेखा कभी खिंचती भी है तो वे अपनी संयत वाणी में कहते सुनाई देते हैं कि डॉक्टर साहब, यह आप क्या कर रहे हैं। मैं तो आपके सामने ही हूँ इन आईनों में। हाँ, प्रो. अंबादास देशमुख कहीं नहीं गए हैं। वे यहीं हैं; मेरे पास, इन किताबों में रचे-बसे।

निदेशक, लुप्तप्राय भाषा केंद्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातिय विश्वविद्यालय,
अमरकंटक - 484886 (मध्य प्रदेश)

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढ़े बन माहि।
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जाने नाहि।। **- कबीर**

आलेख

दक्षिण अफ्रीका में हिंदी की दशा और दिशा

- गोपाल शर्मा

क्वा-जूलू-नाताल दक्षिण अफ्रीका का गन्ना उत्पादन क्षेत्र 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही बन गया था। यहीं भारत के विभिन्न प्रांतों से अनेक गरीब किसान गिरमिटिया मजदूरों के रूप में गन्ने की खेती के निमित्त आए और बस गए। भारत में जमे अंग्रेजी शाशकों ने हजारों लाखों की संख्या में मजदूर पहले मॉरिशस (1834) फिर ब्रिटिश गुयाना (1838), जमाइका (1844) और त्रिनिदाद (1844) तथा फिजी (1845) भेजे। यद्यपि नाताल का उक्त क्षेत्र नई कॉलोनी था फिर भी कुछ ही वर्षों में यहाँ 150000 भारतीय आ गए और इनमें से अधिकांश अपने पाँच-दस वर्ष के अनुबंध (एग्रीमेंट) की समाप्ति के पश्चात भी वापिस नहीं गए। दक्षिण भारत से मुख्यतः तमिल, तेलुगु भाषी थे और कुछेक कन्नड और मलयालम भाषी। उत्तर से भोजपुरी, अवधी, मगही, कन्नौजी, बंगाली, राजस्थानी व ब्रज भाषी थे। उर्दू जानने वाले भी थे पर खड़ी बोली प्रदेश से कोई बिरला ही था। 1875 के पश्चात अर्थात भारतीयों के आगमन के पंद्रह वर्ष बाद गुजराती, कोंकणी और सिंधी भाषी भी जा पहुँचे। हिंदू संस्कृत और मुसलमान अरबी को अपनी-अपनी धार्मिक पहचान के रूप में ले आए थे। इतनी भाषाओं को संजोए भारतीय जब एक नए अफ्रीकी भाषा संसार के संपर्क में आए और वहाँ की भाषा जूलू तथा अंग्रेजी से अनभिज्ञ होने के कारण ही नहीं आपस में भी भाषाई विभिन्नताओं के कारण संपर्कगत कठिनाइयों में पड़े और कामचलाऊ बंबईय्या हिंदी से भी काम न चलता देख एक नई संपर्क भाषा गढ़ते लगे। प्रभाकरन (1991:74) ने दक्षिण भारतीयों की भाषा समस्या पर विचार करते हुए कहा है कि हिंदी के किसी भी रूप को न जानने के कारण पहले तो वे बिल्कुल असहाय हो गए थे किंतु जैसे-जैसे एक पिजिन भाषा विकसित हुई, वे इसमें निष्णात हो गए। भोजपुरी और तमिल का अनोखा सामंजस्य हो गया। एक नई बोली फनाकलो (FANAKALO) विकसित सी हो गई। प्रो. मेस्त्री ने इसका उत्स 1860 के लगभग माना है। भारतीयों ने इस नई बोली व्यवस्था को संस्कारित करते हुए हिंदी/ भोजपुरी के बीच ही नहीं तमिल के साथ भी अनोखा संपर्क व सामंजस्य करके दिखाया। महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में 1893 से 1913 तक रहे और राजनीतिक संघर्ष का पहला पाठ भी यहीं से सीखा। वे कहते हैं कि लगभग समस्त तमिल और तेलुगु भाषी दक्षिण भारतीय हिंदी में सम्यक् वार्तालाप कर सकते हैं। यंग इंडिया, 16 जून, 1920)। कुछ मिशनरी और अन्य अंग्रेज भी हिंदी जानते थे और हिंदी में बोलने की चेष्टा भी करते थे। किंतु जैसा गांधी ने नोट किया कि कुछ युवा भारतीय तब भी अंग्रेजी की अंग्रेजी की टाँग तोड़ने की कोशिश करते थे चाहे वे हिंदी, गुजराती या तमिल भाषी हों (ओपिनियन, 30 जनवरी, 1909)। स्कूलों में हिंदी नहीं अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी। अपनी भाषाएँ मौखिक ही सीखी जाती थीं। मस्ज़िदों और मंदिरों की स्थापना के बाद उनमें पूजा पाठ के साथ ही भाषा सिखाने का

प्रबंध भी होने लगा। गुजराती-हिंदी-उर्दू की पाठशालाएँ चलने लगीं। व्यापारी वर्ग अपने बच्चों को गणित पढ़ाते समय गुजराती में गणित सिखाते थे, चाहे बच्चे अंग्रेज़ी पढ़ते हों।

हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए नाताल में अनुकूल वातावरण बनाया गया। संघर्ष करना पड़ा। सरकारी मदद क्यों दी जाती? दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रारंभिक जीवन और संघर्ष की गाथा प्रायः अन्य गिरमिटियों की गाधा से कहीं अधिक संघर्षपूर्ण रही। भारतीय समाज ने सदैव समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रताड़नाएँ झेलीं। उनको आम दक्षिण अफ्रीकी नागरिकों के समान कोई अधिकार न थे। रंग भेद नीति के वे भी शिकार थे। गांधी की जद्दोजहद का कोई खास प्रभाव नहीं हुआ था। 1930 में अकाल व बेरोजगारी ने कमर तोड़ कर रख दी थी। ऐसे संकट काल में कोई आसरा था तो वह उनके संस्कार, संस्कृति और रामचरितमानस का पाठ था। 1950 में समूह एक्ट संख्या 41 ने रामायण सभाओं को छिन्न भिन्न करके रख दिया। हिंदी का मातृभाषा स्वरूप अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा ने तार-तार कर दिया। कुटुंब प्रथा और संयुक्त परिवार को गहरा आघात लगा। 1970 में 37653 भारतीय परिवारों को देश में अन्यत्र और यत्र-तत्र बसाने-बसने के आदेश दिए गए। संयुक्त परिवार नष्ट होते चले गए। रामायण सतसंग तिरोहित हो गया। प्रो. उषा शुक्ला का मत है कि संयुक्त परिवार के भारतीय आदर्श के छिन्न-भिन्न होने का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि हिंदी में हिंदी भाषी वर्ग की प्रवीणता नष्ट होने लगी।[1] जैसे ही रामचरितमानस के प्रति श्रद्धा बढ़ी और उसका 'पाठ' हिंदी पाठ बना, हिंदी के प्रति सद्भावना और उसका संरक्षण पुणः संभव होने लगा।[2]

अब स्थिति ऐसी है कि अंग्रेजी औपचारिकता के क्षेत्र में आंती जा रही है। हिंदी का प्रयोग सीमित व औपचारिकता के दायरे में होता है। विश्वविद्यालयों में हिंदी का जो किताबी स्वरूप है वह वहीं तक है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी भाषाई परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। युवा धाराप्रवाह वक्ता कम हैं, खिचड़ी-भाषी अधिक। कुछ नए लोग हिंदी का प्रयोग पुराने लोगों से बतियाने में करते हैं। मेस्त्री (1991) ने नई पीढ़ी की हिंदी में शब्द समर्थ की कमी का एक रोचक उदाहरण दिया है। 'लपेट कर' का जो पुराना अर्थ है उसके स्थान पर ये इसे रोटी की सेंडविच बनाने के अर्थ में ही जानते-मानते हैं। भारत में 'लपेटने' के न जाने कितने अर्थ हैं? 'नुकसान' यहाँ अब भोजन को व्यर्थ छोड़ देने के अर्थ में ही प्रयोग किया जाता दिखाई देता है तो अर्थ संकोच के प्रति आश्चर्य भी होता है और दुख भी।

फिर भी दक्षिण अफ्रीका के उत्तर भारतीय मूल से आए एक आम नागरिक की भाषाई चेतना और सामर्थ्य को रेखना रोचक होगा। उसकी मातृभाषा भोजपुरी होगी। वह हिंदी की खड़ी बोली अर्थात मानक हिंदी में पढ़ता लिखता है। पर बोलता बतियाता भोजपुरी मिश्रित हिंदी में है। तमिल उसकी द्वितीय भाषा है क्योंकि वह जहाँ रहता है वहाँ तमिल भाषी अनेक हैं। कामकाजी व्यापारी है इसलिए व्यापार के लेन-देन में

गुजराती बोलता है उसी में खाता बही और हिसाब किताब रखता है। वह स्थानीय लोगों से स्थानीय भाषा व जूलू में बोलता है और उनकी भाषा में बात करके उन्हें आयुर्वेदिक दवाओं, जड़ी-बूटियों, योग, क्रिकेट और हिंदी फिल्मों के बारे में बताता है। उसकी पत्नी भी कमोबेश ये सब भाषाएँ जानती है। हाँ, अंग्रेजी वे अपने नाती-पोतों और अंग्रेजों से बोलने को बाध्य हैं। हिंदी घर परिवार की भाषा है। नई पीढ़ी का अंग्रेजी के प्रति झुकाव उन्हें विचलित तो करता है क्या करें?

इस स्थिति से निवारण के लिए अर्थात अंग्रेजी के वर्चस्व व हिंदी की उपेक्षा से निवारण के लिए लगातार प्रयत्न होते रहे हैं। हिंदी शिक्षा संघ, तमिल फेडरेशन, गुजराती परिषद, आंध्र महासभा (तेलुगु के लिए) और बज्में अदब (उर्दू की खातिर) आदि संस्थाएँ अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों के साथ भी तालमेल रखती हैं। अंग्रेजी का महत्व रोजगार के लिए और गुजराती का महत्व व्यापार के लिए बढ़ता ही जा रहा है। हिंदी घर-संसार, संस्कार, संस्कृति और धर्म से जुडकर स्थित व स्थिर है। हिंदी अफ्रीकी भाषाओं से ही नहीं, अंग्रेजी और भारत की अन्य भाषाओं से की सामंजस्य स्थापित करके आगे बढ़ रही है। फिजी, सूरीनाम और मारिशस में हिंदी की ही एक भंगिमा को भारतीय मूल के समस्त लोगों ने अपनाया हुआ है किंतु दक्षिण अफ्रीका में तमिल-हिंदी के क्षेत्र में द्विभाषिकता की स्थिति है और कुछ प्रतिद्वंदिता भी है ही। गुजराती व उर्दू के साथ सहयोग की मुद्रा है। देखा जाए तो 1927 के दक्षिण अफ्रीकी भारतीय कांग्रेस अधिवेशन में जब से भारतीय भाषाओं के प्रचार प्रसार की जिम्मेदारी स्वैच्छिक संस्थाओं को दी गई तब से 1984 तक ये ही सिलसिला चलता रहा। 1984 के बाद हिंदी स्कूलों में आई। इसका श्रेय राजनेताओं को नहीं, डॉ. सीताराम जैसे प्राध्यापाकों को जाता है। भवानी दयाल संन्यासी, शंकरानंद सरस्वती, नर देव विद्यालंकार आदि ने दक्षिण अफ्रीका आकर हिंदी शिक्षण की नींव रखी। स्थानीय दिग्गजों तथा रामकृष्ण जंघेश्वर लोटन (1894 -1962), पं. गौरी शंकर और राम सिंह आदि ने प्रचार प्रसार किया। अब तो जूलू भाषी भी हिंदी पढ़ना चाहते हैं। कई तो तमिल भी पढ़ते हैं। गिरमिटिया भारतीयों के अतिरिक्त 'पैसेंजर भारतीयों' के बच्चे तथा स्कूली अध्यापक अंग्रेजी लय में हिंदी पढ़ते पढ़ाते दिखाई दे जाते हैं। तमिल-तेलुगु-हिंदी-गुजराती-उर्दू भाषी नव युवक-युवतियों के परस्पर विवाह संबंधों के कारण उत्पन्न संतानों की मातृभाषा हिंदी हो जाती है, एक विशिष्ट भंगिया युक्त हिंदी। भाषावैज्ञानिकों ने इसे 'मौन भाषाई क्रांति' कहा है। यहाँ युवा पीढ़ी भाषाई तालमेल को सहर्ष स्वीकार करते हुए भी अपने आप को भारतीय मूल का कहलाने में गर्व का अनुभव करती है और इस गर्व की अभिव्यक्ति वह हिंदी के प्रति सौहार्द प्रदर्शित करके भी करती है। कई माता पिता आजकल इस आस में रहते हैं कि अंग्रेजी का नशा जवानी के जोश के साथ ही जब कम हो जाएगा तो 40 के होते न होते उनकी संतान हिंदी भाषी स्वतः ही हो जाएगी। हिंदी फिल्मों ने ही नहीं भारत के समस्त कार्य व्यापार और क्रिकेट आदि ने भी हिंदी को जिज्ञासा से आगे जाकर अभिलाषा का विषय बनाया है। भारतीय मूल के लोग दक्षिण अफ्रीका के नाताल क्षेत्र तक ही सीमित नहीं

रहे और अब वे समस्त राष्ट्र के चप्पे चप्पे पर हैं। उनमें बाहरी मिलता भी है किंतु पाश्चात्य रंग-ढंग में भी भारतीयता के प्रति मोह है। डॉ. शुक्ला के शब्दों में 'अधिकांश हिंदी लोगों ने दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए पाश्चात्योन्मुख समाज की जीवन चर्या को अपना लिया है। उन्होंने पाश्चात्य तौर तरीकों जैसे पाश्चात्य पहनावा व भाषा को स्वीकार कर लिया है। परंतु वे अभी भी अंदर से पूर्णतः भारतीय हैं। उन्हें भारतीय भोजन पसंद है। भारतीय नृत्य, संगीत, फिल्में, साहित्य और धर्म के प्रति रुचि है और स्त्रियाँ साडी और सलवार (सलवार को यहाँ पंजाबी कहा जाता है) को आज भी उसी चाव से पहनती हैं।[3]

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में एक विचित्र स्थिति है। भारतीयों की भाषाई चेतना में अनेक भाषाएँ हैं और समस्त प्रवासी भारतीयों के समान उनकी रुचि और रुझान भी भारत की ओर है। हिंदी की ही बात करें तो यहाँ हिंदी का अर्थ प्रामाणिक, परिमार्जित, परिनिष्ठित, परिशोधित खड़ी बोली नहीं है। यहाँ हिंदी का जो स्वरूप है वह मूलतः और मुख्यतः भोजपुरी से अतिशय प्रभावित है। खड़ी बोली से उसकी तुलना करना ठीक नहीं। सर जॉर्ज ग्रियर्सन जब अपना भाषा सर्वेक्षण प्रस्तुत कर रहे थे तो वे भारतीय ग्रामीण अंचलों की हिंदी ही देख रहे थे। केपटाउन विश्वविद्यालय में भारतीय मूल के दक्षिण अफ्रीका में पले बढ़े प्रोफेसर राजेंद्र मेस्त्री ने प्रोफेसर आर. लास के शोध-निर्देशन में अपने शोध प्रबंध 'ए हिस्ट्री ऑफ द भोजपुरी (हिंदी) लैंगुएज इन साउथ अफ्रीका' (1985) में यह स्पष्ट किया है कि मानक हिंदी और दक्षिण अफ्रीका में लाई उत्तर भारतीय बोलियों- भोजपुरी, अवधी आदि के संबंध को न तो समझा गया है और न ही इनके प्रयोक्ता और प्राध्यापक समझ समझा पाए हैं। अधिकतर पढ़े लिखे न अर्धशिक्षित लोग 'दक्षिण अफ्रीकी हिंदी' को एक टूटी फूटी अस्तव्यस्त और रसोईघर के लिए उपयोगी भाषा मानते हैं और कभी-कभी तो भारतीय फिल्मों, रेडियो, शिक्षा आदि में प्रयुक्त मानक हिंदी से उसकी तुलना करके दक्षिण अफ्रीकी हिंदी को उसका बचकाना स्वरूप करार देते हैं।[4]

दक्षिण अफ्रीका की हिंदी को 'हिंदी' से तुलनीय न मानकर देखा जाना चाहिए। यह बिहार व पूर्वी उत्तर प्रदेश की हिंदी के निकट है और मेरठ दिल्ली की हिंदी से दूर प्रतीत होती है। एक नई भाषा की तरह इसे देखा जा सकता है। इसमें कुछ लक्षण बिहारी के हैं जैसे भूतकालीन वाक्य का अंत 'ल' से होता है- हम लौटाली। 'जा' का प्रयोग- हम लोग देख ली जा। 'के' का प्रयोग- छोकरी के चाय बानने की परी। 'तब हम बोली ने जायबे करब।' इसके कुछ लक्षण पूर्वी उत्तर प्रदेश के हैं जैसे- देखिस, देखिन। पश्चिमी उत्तर प्रदेश से भी एक लक्षण मिलता है- 'ना' का प्रयोग - बोल देलास तू जा काम ले ना'। हम अईली', 'तू अई ले' और 'उ आइल' भोजपुरी से हैं। हिंदी में जैसी आप, तुम, तू की स्थिति है वह यहाँ दिखाई नहीं देती। 'अपन' का प्रयोग 'स्वयं' के लिए करते हैं। 'तू' के लिए भी 'अपन' ही (शायद यह 'आप' का ही एक स्वरूप है।)

'गिरमिटिया' शब्द जो मूलतः अंग्रेजी शब्द 'एग्रीमेंट' से निकला है वह तो यहाँ है ही, अन्य शब्दों का निर्माण भी खूब हुआ है। भारतीय आज भी उन अंग्रेज व्यापारियों को 'ठगना' और 'लुटेरा' कहते हैं

जो उन्हें यहाँ लाए थे। 'कलकतिया' का अर्थ है वे लोग जो कभी 'कलकत्ता' से जहाज में चढ़े थे, कलकत्तावासी नहीं। 'कलकतिया बात' का अर्थ है कलकत्ता की भाषा और जहाज में पनपे भाईचारे के लिए बने 'जहाजी भाई' और 'जहाजी बहिन' यहाँ आकर बसे भारतीयों ने अंग्रेजी भाषा व अफ्रीकी भाषा के जिन शब्दों को उच्चारण की दृष्टि से कठिन पाया उनको अनुकूलित कर लिया। भारतीय आज भी 'जोहानसबर्ग' को 'जोबाग' कहते हैं और 'पीटरमर्जबर्ग' को वे 'मिर्चबाग' कहते हैं। (ठगवा अंग्रेज इन्हें यह कहकर लाए थे कि यहाँ मिर्च के पौधों पर पैसे उगते हैं।)। दक्षिण अफ्रीका की हिंदी में 'जात' का अर्थ 'जाति' नहीं बल्कि 'प्रकृति' है- ओकर जात ऐसी है। कुछ जाति सूचक शब्द गाली हो गए हैं जैसे 'चांडाल' एक गाली है। अंग्रेजी के प्रभाव से हिंग्लश यहाँ भी आ रही है।

दक्षिण अफ्रीका की हिंदी और उसकी दशा दिशा पर इस आलेख में हिंदी का संकीर्तन करते हुए कुछ भी लिख देने के स्थान पर यही लिखना पर्याप्त होगा कि अंग्रेजी भाषी होते जा रहे विश्व में भारतीय मूल के दक्षिण अफ्रीकी नागरिकों के पुत्र-कलत्र भी इस रंग में रंगते जा रहे हैं किंतु भारत के बढ़ते वर्चस्व को देखकर उनमें एक नई ऊर्जा का संचार हो रहा है। नौवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन (22-24 सितंबर 2012) दक्षिण अफ्रीका के जोहानसबर्ग में हुआ था जिसमें 'भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ' पर चर्चा हुई। भारत से अनेक साहित्यकार दक्षिण-अफ्रीका गए। विचारों का आदान प्रदान भी हुआ। सम्मान और अनुदान भी हुआ। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद का योगदान और कार्य उल्लेखनीय है ही। किंतु जैसा हिंदी शिक्षा संघ के अध्यक्ष हीरालाल शिवनाथ का कहना है कि दक्षिण अफ्रीका में हिंदी की दशा व दिशा सुधारने के लिए नई आर्थिक शक्ति के रूप में उभरते भारत और हिंदी प्रेमी प्रधानमंत्री से उन्हें बहुत आशाएँ हैं। हिंदी को एक नई पहचान मिले इसके मारिशस, फिजी, त्रिनीदाद और भारत आदि सभी को दक्षिण अफ्रीका का सहयोग करना चाहिए।

प्रो. उषा देवी शुक्ला (क्वाजूलू - नाताल विश्व विद्यालय, दक्षिण अफ्रीका) ने इंगित किया है कि भाषाई व सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से भारत व दक्षिण अफ्रीका काफी समीप हैं। उनके शोध ग्रंथ 'रामचरितमानस इन साउथ-अफ्रीका' (2002) में यह भी विचार है कि जिस प्रकार हिंदी के पठन-पाठन में अवधी में लिखी गोस्वामी तुलसीदास की कृति 'रामचरितमानस' दक्षिण अफ्रीका में पाठ्य पुस्तक की तरह प्रयोग की जा सकी है वैसे ही अन्यत्र भी ऐसे प्रयोग हो सकते हैं। 'लैंगुएज थ्रू लिटरेचर' का विचार नया नहीं है। भारतीयता का आदर्श है 'मानस'। हिंदी की कामकाजी व प्रयोजनमूलक छवि व प्रयोग की संभावना को दक्षिण अफ्रीका में नहीं देखा जा सकता। यहाँ हिंदी को एक ओर तो समस्त भारतीय भाषाओं के समेकित स्वरूप के परिचायक के रूप में देखना होगा। दूसरे यह भी सुनिश्चित करते हुए चलना होगा कि दक्षिण अफ्रीका में हिंदी और भारतीय जीवन शैली, धर्म, अध्यात्म, भोग, आयुर्वेद, वेद, परिधान, संस्कार, नृत्य-नाट्य, फिल्म, खेलकूद आदि एक दूसरे में रच बस सकें। विश्वविद्यालयों और

विद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन होता रहेगा। भारतीय ही नहीं अफीकी की हिंदी सीख ही लेंगे क्योंकि जैसे-जैसे हिंदी वाले मजबूत होंगे, उनका विश्व में दबदबा और प्रभाव बढ़ेगा। हिंदी का वैश्विक संदर्भ प्रसार पाएगा ही और अंत में, दक्षिण अफ्रीका में 1911 में श्री रामायण सभा की स्थापना हुई जिसके तत्वावधान में लोग रामचरितमानस का प्रति रविवार और हनुमानचालीस का मंगलवार को पाठ करते थे। 1927 में श्री रामायण सभा प्राइमरी पाठशाला का गठन पं. लक्ष्मण पांडेय के प्रयत्नों से हुआ और 1928 में सरकारी अनुदान भी मिलने लगा। ऐसे पूर्वजों के पग-चिन्हों पर चलकर भारतीय दक्षिण अफ्रीकी नई पीढ़ी हिंदी को अपने सांस्कृतिक संवर्धन के लिए स्वत: ही अंगीकार कर रही है। हिंदी उनके लिए भारतीयता का पर्याय मात्र नहीं बल्कि उनकी अस्मिता का एक जीता जागता उदाहरण भी है। 'भगवान अखिल विश्व में गूँजे हमारी भारती !"

(Grateful Acknowledgement: The author would like to thank Professor Rajendra Mesthrie, University of Cape Town, South Africa and Professor Usha Devi Shukla, University of QwaZulu-Natal, South Africa. They are the acknowledged masters of the field and my writing is nothing but a faltering imitation of the great. Thank you.)

Notes

1. The loss of competence in Hindi is a direct result of the breaking up of the joint family. (Ramcharitmanas in South Africa: Usha Devi Shukla, 2002: 140).
2. As a Hindi text the Ramacharitamanas contributed to Hindi learning amongst the labourers, aiding language maintenance and delaying language shift. Especially in the last decade, it has once again been a factor in reversing language shift to a significant degree. (Halting Language Shift: Hindi in South Africa, Shukla: 2007: 38)
3. Most Hindis in South Africa have, in more ways than one, adapted to life in a Western-oriented society; they have adopted some western ways such as dressing and language, they are still inherently very much Indian. They enjoy Indian food, dance music, films, literature, religion and the women love to wear the elegant Sari and Salvar (called Panjabi in South Africa) even today (Ibid, 2002: 137-138)
4. The relationship between Standard Hindi and the two Northern Principal dialects brought to South Africa, Bhojpuri and Awadhi, is not at all understood by speakers of these dialects, nor by most teachers of Hindi in South Africa. Most people, learned and lay alike, characterise "South African Hindi" as a "debased" "broken" language fit only for the kitchen - a distorted notion stemming from invalid comparisons with standardized Hindi of Indian films, radio and formal education. (A history of the Bhojpuri (or Hindi) Language in South Africa: Rajendra Mesthrie, 1985:27)

- 6-3-120/23, एन पी कॉलोनी, शिवरामपल्ली, हैदराबाद - 500 052

वेणुगोपाल की कविताएँ

मध्यांतर

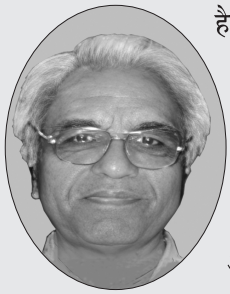

हैदराबाद के प्रसिद्ध क्रांतिकारी कवि वेणुगोपाल का जन्म 22 अक्तूबर, 1942 को आंध्र प्रदेश के करीमनगर में हुआ। उनका मूल नाम नंद किशोर शर्मा था। वे देश में नक्सलवादी आंदोलन से उभरे हिंदी के प्रमुख क्रांतिकारी कवियों में से थे। 'वे हाथ होते' (1972), 'हवाएँ चुप नहीं रहतीं' (1980) और 'चट्टानों का जलगीत' (1980) उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं। रंगमंच और पत्रकारिता से भी वे जुड़े रहे।

हवाएँ चुप नहीं रहती

हवाओं ने सरापा समझा अंधेरे को।
झूठ नहीं कहा था उसे।
लेकिन
अंधेरे ने ग़लत समझा हवाओं को।
क्योंकि उजाले को
सच कहा था उन्होंने।
दिन था
तो भी अंधेरा था।
चंद कमरों में
चंद जिस्मों में
चंद शब्दों में
चंद वादों में
और चंद भविष्यवाणियों में
घना होता हुआ
लेकिन
हवाओं ने इनकी नहीं
बल्कि सन्नाट सड़कों और उनसे जुड़े
गुँजान आँगनों-मैदानों और खेतों की
बात कही थी।
जहाँ रात थी।
तो भी उजाला था।
हवाएँ जहाँ-जहाँ से सनसनाती गुज़री थीं
लौटकर वहाँ-वहाँ के संस्मरण सुनाए थे।
आज भी सुनाती हैं।
हवाएँ कभी चुप नहीं रहतीं।
आगामी सुबह के रूप-बखान में मुब्तिला
वे इस वक़्त भी सक्रिय हैं।
चंद अटूट उम्मीदों में।

देखना और सुनना

देखने के नाम पर
मेरे पास सिर्फ़ वह अंधेरा है
जो बढ़ता ही चला जा रहा है
लेकिन सुनने के नाम पर
ढेर सारी किलकारियाँ हैं
घुटनों के बल
खिसक-खिसक कर आते हुए बच्चे की।
मैं जो कुछ भी देख पा रहा हूँ

वह आज है।
लेकिन जो सुन रहा हूँ
वह आने वाला कल है।

और सुबह है

हम सूरज के भरोसे मारे गए
और सूरज घड़ी के।
जो बंद इसलिए पड़ी है
कि हम चाबी लगाना भूल गए थे
और सुबह है कि हो ही नहीं पा रही है।

प्राक्सी - 2

ऐसा कभी मुमकिन नहीं होता
कि जहाँ ख़ूनी कार्रवाई का मामला हो
वहाँ प्राक्सी से काम चला लिया जाए।
क्रांति किसी नाटक की रिहर्सल नहीं होती।
वह बस, क्रांति होती है।
और कुछ नहीं।
उसमें न तो हरी कोंपलों को बख़्शा जाता है
और न झूमती टहनियों को।
सबको अपने-अपने हिस्से की मौत
झेलनी होती है।
सबकी जिंदगी के लिए।
अपना-अपना रोल निभाते हुए।

आशावाद

तूफ़ान है
और जड़ों तक काँप रहा है पेड़।
लेकिन उसकी डाल पर बैठे
कवि के लिए
भविष्य उजला है।
क्योंकि वह पेड़ नहीं
उसका काँपना नहीं
तूफ़ान नहीं
बल्कि पत्तों का हरापन
देख रहा है।

आश्वस्ति

भावी जंगल और उसकी भयावनी
ताकत के बारे में सोचता हुआ
सुनसान मैदान में निपट अकेला
पेड़ मुस्कुराता है-खिलखिलाता है
और उसके आसपास उमड़ आई
नन्हें-नन्हें पौधों की बाढ़
नहीं समझ पाती
कि पेड़ अकेला पेड़
अपने अकेलेपन में
किस बात पे ख़ुश है- कि हँस रहा है?
वे नहीं जान पाते
कि पेड़ जानता है
कि वे अपने नन्हेंपन में भी
मैदान के भविष्य हैं।

अंधेरा मेरे लिए

रहती है रोशनी
लेकिन दिखता है अंधेरा

तो कसूर
अंधेरे का तो नहीं हुआ न !
और न रोशनी का !
किसका कसूर ?
जानने के लिए
आईना भी कैसे देखूँ
कि अंधेरा जो है
मेरे लिए रोशनी के बावजूद !

उजाला ही उजाला

आ गया था ऐसा वक्त
कि भूमिगत होना पड़ा
अंधेरे को
नहीं मिली
कोई सुरक्षित जगह
उजाले से ज्यादा।
छिप गया वह
उजाले में कुछ यूँ
कि शक तक नहीं
हो सकता किसी को
कि अंधेरा छिपा है
उजाले में।
जबकि फिलहाल
चारों ओर
उजाला ही उजाला है !

जहाज पर पक्षी

उड़ना बार-बार
और हर बार उसी जहाज पर लौट आना
अब नहीं होगा।
दूर ज़मीन दिखाई पड़ने लगी है
जहाज बस, किनारा छूने ही वाला है
लेकिन मैं फिर भी बेचैन हूँ
अब तक तो सब-कुछ तय था।
उड़ान की दिशाएँ भी।
उड़ान की नियति भी कि अपार
जलराशि के ऊपर थोड़ी देर पंख
फड़फड़ा लेना है
और फिर दुबारा लौटकर
फिर वहीं आ जाना है।
अब सब-कुछ मेरी मरज़ी पर निर्भर होगा
चाहूँ तो पहाड़ों की तरफ़ जा सकूँगा
जंगल की तरफ़ भी।
या फिर से आ सकूँगा
किनारे पर खड़े जहाज की तरफ़।
भावी आज़ादी पंखों में फुरहरी
जगा रही है।
ख़ुद को बदलते पा रहा हूँ।
और यह सब ज़मीन के चलते
जो दिखाई पड़ने लगी है पक्षी हूँ।
परआसमान से ज़्यादा
ज़मीन से जुड़ा हूँ।
आँखों में अब ज़मीन ही ज़मीन है...।
और वे पेड़, जिन पर अगली रातों में
बसेरा करूँगा
वे पहाड़, जिन्हें पार करूँगा।
वे जंगल, जहाँ जिंदगी बीतेगी

और ये सब एक निषेध है
कि पक्षी को
समुद्री-यात्रा पर जा रहे जहाज की
ओर मुँह नहीं करना चाहिए।

बंद घड़ी

कोई भी पूछता है वक़्त
तो मैं बता नहीं पाता
घड़ी बंद पड़ी है
उसमें अभी भी 1947 ही बजा हुआ है।
पता ही नहीं चल पा रहा है
कि अब क्या बजा होगा?
1978 या जनता सरकार?
किसी भी घड़ी बाँधे व्यक्ति से पूछो
वह ऐसा ही कुछ जवाब देता है
ठीक से पता नहीं चल पाता आख़िरकार
तो मैं मज़बूर हो
'भविष्य' बजा लेता हूँ
क्योंकि वही एक ऐसा समय है जो
हमेशा बजा रह सकता है।

उड़ते हुए

कभी अपने नवजात पंखों को देखता हूँ
कभी आकाश को
उड़ते हुए
लेकिन ऋणी मैं फिर भी
ज़मीन का हूँ
जहाँ
तब भी था जब पंखहीन था
तब भी रहूँगा जब पंख झर जाएँगे।

भविष्य

मज़बूत घोड़ों की तरह
दौड़ रही हैं जड़ें
और सबेरा है
हर तरफ़
गोया घने जंगलों का बिंब
उभर आया हो
आकाश में।

ख़तरे

ख़तरे पारदर्शी होते हैं।
ख़ूबसूरत।
अपने पार भविष्य दिखाते हुए।
जैसे छोटे से गुदाज़ बदन वाली बच्ची
किसी जंगली जानवर का मुखौटा लगाए
धम्म से आ कूदे हमारे आगे
और हम डरें नहीं। बल्कि देख लें
उसके बचपन के पार
एक जवान खुशी
और गोद में उठा लें उसे।
ऐसे ही कुछ होते हैं ख़तरे।
अगर डरें तो ख़तरे और अगर
नहीं तो भविष्य दिखाते
रंगीन पारदर्शी शीशे के टुकड़े।

आलेख

हमारा संविधान

- नन्दकिशोर साह

भारत का संविधान ऐसा महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो देश के प्रत्येक नागरिकों को समान अधिकार देता है। साथ ही हमारे कर्तव्यों को भी निर्धारित करता है। लिखते समय मूल संविधान में 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 12 अनुसूचियाँ शामिल थीं। भारतीय संविधान में स्पष्ट लिखा है कि भारत एक संप्रभुता संपन्न, समाजवादी, सेकुलर लोकतांत्रिक गणराज्य है। संप्रभुता शब्द स्वतंत्र होने के मायने बताता है, तो समाजवादी शब्द को 1976 में हुए 42वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के जरिए प्रस्तावना में जोड़ा गया। पंथनिरपेक्ष या धर्मनिरपेक्ष शब्द भी इसी संशोधन में शामिल किया गया था। लोकतांत्रिक भारत एक स्वतंत्र देश है, जहाँ लोगों को अपने अनुसार नेता चुनने की स्वतंत्रता दी गई है।

प्रारूप समिति का गठन : आजादी के 13 दिन बाद 28 अगस्त, 1947 को एक बैठक में निर्णय लिया गया कि प्रारूप समिति भारत के स्थाई संविधान का प्रारूप तैयार करेगी। इसके लिए डॉ. भीमराव अंबेडकर ने पूरी दुनिया के तमाम संविधानों का बारीकी से अध्ययन किया और प्रारूप तैयार किया। भारत के संविधान का मसौदा तैयार करने वाली समिति की स्थापना 29 अगस्त, 1947 को की गई थी, जिसके अध्यक्ष के तौर पर डॉ. भीमराव आंबेडकर की नियुक्ति की गई। संविधान प्रारूप समिति की बैठक 114 दिनों तक चली।

संविधान सभा में सदस्य : संविधान सभा में शुरू में 389 सदस्य थे किंतु मुस्लिम लीग द्वारा स्वयं को इससे अलग कर लिए जाने के बाद संविधान सभा के सदस्यों की संख्या 299 रह गई थी। संविधान सभा के सदस्य भारत के राज्यों की सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने गए थे। 9 दिसंबर, 1948 को संविधान सभा सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में पहली बार समावेषित हुई थी, लेकिन मुस्लिम लीग ने अलग पाकिस्तान बनाने की माँग को लेकर इस बैठक का बहिष्कार किया था। 11 दिसंबर, 1946 को हुई संविधान सभा की बैठक में राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का अध्यक्ष चुना गया और वे संविधान के निर्माण का कार्य पूरा होने तक इस पद पर रहे। पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद इत्यादि इस सभा के प्रमुख सदस्य थे। संविधान सभा में 15 महिला सदस्य थीं, जिनमें से दुर्गाबाई देशमुख, हंसा मेहता, राजकुमारी अमृत कौर और अन्य महिलाओं ने भी महिलाओं, वंचित समाज और मजदूरों से संबंधित कई विषयों में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

संविधान का हस्तलेखन : संविधान को लिखना एक बड़ा काम था। इस महत्वपूर्ण काम को दिल्ली निवासी प्रेम बिहारी नारायण रायजादा ने पूरा किया। इस काम में उन्हें 6 महीने का वक्त लगा। हस्त लेखन उनका खानदानी पेशा था। इसलिए हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं में संविधान की मूल प्रति को रायजादा ने अपने हाथों से लिखा था। इसी संविधान की 3 प्रतियाँ बनाई गईं, जिसमें से दो को नंदलाल बोस और राम मनोहर सिन्हा द्वारा सुसज्जित पत्रों पर तैयार किया। 1400 पन्नों की संविधान की एक प्रति को अंग्रेजी में

रासबिहारी ने और हिंदी में बी के वैध ने लिखा। उन्होंने इसे लिखने का कार्य एक हफ्ते में ही पूरा कर दिया था। जबकि तीसरी प्रति को अंग्रेजी में देहरादून में छपवाया गया। यह हमारे लिए आश्चर्य के साथ गौरव की बात है कि इतना महत्वपूर्ण दस्तावेज होते हुए भी भारतीय संविधान की मूल प्रति हस्तलिखित ही है, जिसकी पहली दो प्रतियाँ हिंदी और अंग्रेजी में है।

संविधान को चित्रकारी से सजाया : मशहूर चित्रकार आचार्य नंदलाल बोस और उनके सहयोगियों ने भारत के संविधान को सजाया था। तब 22 चित्र बनाए गए थे। सभी चित्र 8 गुणा 13 इंच के आकार में हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू के आग्रह पर बोस द्वारा 221 पृष्ठों के इस दस्तावेज के सभी 22 भागों में से प्रत्येक को एक-एक चित्र से सजाया गया। भारतीय संविधान के इस मूल प्रति पर इन 22 चित्रों को बनाने में 3 साल से ज्यादा का वक्त लगा। कहते हैं, इस काम के लिए नंदलाल बोस को 21000 मिले थे। उन्होंने जो चित्र बनाया है, उसमें मोहनजोदड़ो, वैदिक काल, रामायण, महाभारत, बुद्ध के उपदेश, महावीर के जीवन, मौर्य-गुप्त और मुगल काल की झाँकी थी। इसके अलावा गांधी, सुभाष चंद्र बोस, हिमालय से लेकर समुद्र आदि के चित्र हैं। देखा जाए तो यह चित्र भारतीय इतिहास की विकास यात्रा है। बोस के ही शिष्य राम मनोहर सिन्हा ने संविधान के प्रस्तावना पेज को सजाया। संविधान के जो सजे हुए चित्र हम देखते हैं, वह संविधान की पहली हस्तलिखित प्रति के ही चित्र है। संविधान की प्रस्तावना को सुनहरे बॉर्डर से घेरा गया है। संविधान की मूल प्रति सुरक्षित किया गया है। टाइपिंग या प्रिंटिंग का कोई इस्तेमाल नहीं किया गया है। एक हजार वर्ष से अधिक सालों तक बचे रहने वाले सूक्ष्मजीवीरोधक चर्म पत्रों पर भारतीय संविधान की पांडुलिपि लिख कर तैयार की गई। संविधान की बेशकीमती प्रतियों को संसद भवन की लाइब्रेरी के एक कोने में बने स्ट्रांग रूम में सहेज कर रखा गया है, जिसे पढ़ने की इजाजत किसी को भी नहीं है। संविधान की प्रतियाँ कभी खराब न हो इसके लिए इन्हें हीलियम गैस से भरे केस में सुरक्षित रखा गया है। यही कारण है कि हमारे देश की यह अमूल्य धरोहर हमारे पास सुरक्षित है, और आज भी मूल अवस्था में है। हीलियम एक ऐसी गैस है, जो संविधान की प्रति के पन्नों को वातावरण के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया करने से रोकता है।

संविधान लागू हुआ : 26 नवंबर, 1949 को भारतीय संविधान के प्रारूप को संविधान सभा के सामने पेश किया गया। संविधान सभा में इसकी प्रारूप को कुछ जरूरी संशोधन के बाद संविधान की शक्ल दे दी। इसलिए प्रत्येक वर्ष 26 नवंबर, को हम लोग संविधान दिवस के रूप में मनाते हैं और 26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू कर दिया गया। तभी से हम इस दिन को गणतंत्र दिवस के रूप में मना रहे हैं। संविधान लागू होने से 2 दिन पहले 24 जनवरी, 1950 को संविधान की तीनों प्रतियों पर संविधान सभा के 284 सदस्यों ने हस्ताक्षर किए थे। 14 अगस्त, 1947 की रात संविधान सभा की पहली बैठक का आगाज वंदे मातरम के साथ हुआ था और समापन जन-गण-मन के साथ। वंदे मातरम की रचना महान स्वतंत्रता सेनानी बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय उर्फ बंकिम चंद्र चटर्जी ने की थी। बंगाल में आजादी के आंदोलन के दौरान क्रांतिकारियों में जोश भरने के लिए यह गीत गाया जाता था। धीरे-धीरे यह गीत बहुत लोकप्रिय हो गया।

इसलिए राजपथ पर गणतंत्र दिवस समारोह में जन गण मन के साथ वंदे मातरम की धुन भी बजाई जाती है। हर साल 26 जनवरी, को गणतंत्र दिवस समारोह की शुरूआत राष्ट्रपति तिरंगा फहरा कर करते हैं। संविधान निर्माण में 2 वर्ष 11 महीने और 18 दिन का वक्त लगा। संविधान के निर्माण कार्य पर कुल ₹ 63,96,729 का खर्च आया और इसके निर्माण कार्य में कुल 7,635 सूचनाओं पर चर्चा की गई।

संविधान में संशोधन : इसमें अभी तक 101 बार संशोधन हो चुके हैं। संविधान में किए गए संशोधनों के जरिए सामाजिक जरूरतों के अनुरूप जनतंत्र और शासन प्रणाली को मजबूती प्रदान करने के प्रयास किए गए। संविधान में पहला संशोधन वर्ष 1951 में किया गया था, जिसके तहत स्वतंत्रता, समानता और संपत्ति से संबंधित मौलिक अधिकार को लागू करने संबंधी व्यावहारिक कठिनाइयों का निराकरण करने के लिए संविधान में नौवीं अनुसूची जोड़ी गई थी। हमारा संविधान आज के युवा भारत में और भी अधिक प्रासंगिक हो गया है। आज के युवाओं में संविधान को लेकर समझ बनानी होगी। युवा में संविधान के प्रति जो निष्ठा पैदा होगी, वह हमारे लोकतंत्र को, हमारे संविधान को और देश के भविष्य को मजबूत करेगी। आजादी के अमृत काल में यह देश की अहम जरूरत है। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन से जुड़े हैं।

ग्राम पोस्ट, बनकटवा, भाया-घोड़ासहन जिला-पूर्वी, चम्पारण, बिहार - 845 303

पाठकीय

बहुमुखी विस्तार का परिचय

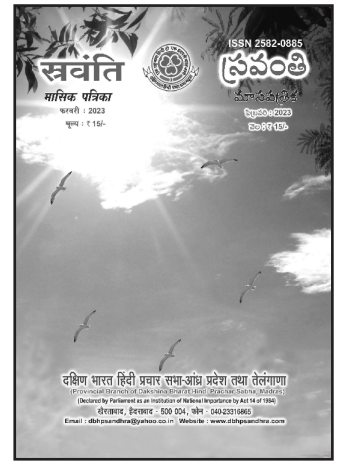

'स्रवंति' के फरवरी, 2023 के अंक में रुक्माजी राव की कविताएँ देख कर बहुत रोमांच हुआ। 1994 में उनके काव्य-संग्रह 'खुली खिड़कियों का सूरज' को 'अंतरराष्ट्रीय कला एवं संस्कृति परिषद' द्वारा पुरस्कृत किया गया था। तब वे उत्तर प्रदेश के नजीबाबाद नगर में पुरस्कार स्वीकार करने आए थे। उनके साथ दक्षिण के हिंदी लेखक के. एस. सोमनाथन नायर (नाटक के लिए) और कल्याणपुरम् रामनाथ नंजुंडन (शोध-समीक्षा के लिए) को पुरस्कृत किया गया था। उड़ीसा से बनमाली दास, असम से बापचंद्र महंत और बंगाल से अपर्णा टैगोर जैसे स्वनामधन्य रचनाकार भी उस साल नजीबाबाद में उपस्थित हुए थे। इस लेखक-मंडल में रुक्माजी राव 'अमर' अपनी जीवंत छवि के कारण अलग से पहचाने जा रहे थे। कवि के साथ उनका रंगमंच का अनुभव उनकी इस छवि की पृष्ठभूमि में था। मंच से दिया गया उनका वक्तव्य भी अपने ही ढंग का था। रुक्माजी राव 'अमर' की कविताएँ छाप कर 'स्रवंति' ने उनकी स्मृति को ताजा कर दिया। इस अंक की अन्य सामग्री भी पठनीय है और पत्रिका के बहुमुखी विस्तार का परिचय देती है। आगामी अंक भी स्तरीय ही होंगे। प्रतीक्षा रहेगी।

देवराज, सी-112, अलकनंदा अपार्टमेंट्स, रामपुरी, पो. चंदेरनगर - 201 011 (जि. गाज़ियाबाद)

आलेख

भारतीय साहित्य : चिंतन और चुनौतियाँ

- आलोक पाण्डेय

मेरी पढ़ाई लिखाई जे एन यू से है। इसलिए उसकी तरफ नज़र बनी रहती है। आप जानते हैं कि कुछ वर्षों पहले वहाँ अफजल गुरु की फाँसी के बाद नमाज़ ए जनाज़ा हुआ था, जिसमें भारत तेरे टुकड़े होंगे इंशा अल्लाह इंशा अल्लाह जैसे बहत सारे नारे लगे थे। बड़ा हंगामा हुआ था। अगले कई दिनों तक वहाँ राहुल गांधी समेत अनेक नेता जाते और अपना समर्थन इन तत्वों को देते रहे। उसी जे एन यू से पढ़े, वहीं पर शिक्षक रहे और बाद में लोक सेवा आयोग के सदस्य भी रहे प्रतिभाशाली आलोचक और प्रखर चिंतक माने जाने वाले मेरे एक शिक्षक भी वहाँ गए। दो घंटों के अपने आक्रामक भाषण में उन्होंने सब कुछ कहा। पुलिस से लेकर कोर्ट तक सबकी निंदा की और खिल्ली उडाई, अभिव्यक्ति की आजादी की भरपूर वकालत की। पर एक शब्द भी उन्होंने उन नारों, तत्वों, और नमाज ए जनाजा के खिलाफ नहीं कहा। वह पूरा भाषण यू ट्यूब पर है। मैंने भी उसे वहीं देखा सुना और उन्हें फ़ोन किया और जब ये कहा कि आपने देश की बर्बादी के नारे लगाने वालों के खिलाफ एक शब्द भी क्यों नहीं कहा। तो उन्होंने उसका अंत तक सीधा जवाब नहीं दिया। और एक घंटे तक की लगभग तनावपूर्ण हो चुकी बात चीत में उन्होंने उस सारे वाक्छल का सबूत दिया, जिसमें हमारे प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को महारथ हासिल है।

दूसरी घटना हाल फिलहाल की है। कोचीन यूनिवर्सिटी आफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, केरल के विद्यार्थी सरस्वती पूजा करना चाहते थे। उनकी प्रार्थना को कुलपति ने लिखित आदेश में यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया कि ऐसा करना सेकुलरिज्म के खिलाफ है, और एक आखिरी बात जो मुझे हाल ही में पता चली. अपने समय के दुनिया के महानतम नालंदा विश्विद्यालय को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले, विद्यार्थियों और शिक्षकों का संहार करने वाले, उसके अत्यंत समृद्ध पुस्तकालय को जलाकर ख़ाक करने वाले बख्तियार खिलजी के नाम पर, वहीं पर पास में बख्तियारपुर रेलवे जंक्शन है। पर किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता। ट्रेनें भी चल रही हैं और लोग भी, इन और इन जैसी अनेक घटनाओं ने मुझे सोचने पर विवश किया कि ऐसा क्यों है? ये कौन लोग हैं जो ऐसा कर रहे हैं और वे कौन लोग हैं जो इनके मूक दर्शक हैं। आखिर ऐसा हुआ कैसे? और इस करने और होने का क्या कोई रिश्ता हिंदी साहित्य से है?

मुझे थोड़ा पीछे जाने की इज़ाज़त दें। 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका में नेहरु प्राचीन भारत का गुणगान करते हैं कि 'उन दिनों के भारतवासी बड़े मस्त, अत्यंत जीवंत, अति उत्साही और परम साहसी थे। वे दूर देशों तक यात्रा करने बाले, दक्षिण एशिया में उपनिवेश बनाने वाले, विचारों के क्षेत्र में ऊँची से ऊँची चोटियों पे कदम रखने वाले, अत्यंत गौरवमयी भाषा में रचना करने वाले, कला के क्षेत्र में

अत्यंत उच्चकोटि की कारयित्री प्रतिभा का परिचय देने वाले थे। उस समय एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक, समग्र भारत वर्ष में सांस्कृतिक उत्साह लहरें ले रहा था।'

नेहरू एक अन्य पुस्तक 'भारत : आज और कल' में लिखते हैं, "मैं अक्सर यह सोचकर हैरान रह जाता हूँ कि हमारी जाति कहीं बुद्ध, महाभारत, रामायण, गीता और उपनिषद को भूल जाए तो उसका हश्र क्या होगा? हमारी जड़ें उखड़ जाएँगी, हम उन सारी बुनियादी खूबियों को खो देंगे जो युगों से हमारे साथ चली आ रही हैं और जिनके कारण दुनिया में हमारी हैसियत बनी हुई हैं, तब भारत भारत न रह सकेगा।"

ये सब लिखने वाले नेहरू ने इस दिशा में क्या प्रयास किए? उन्होंने ऐसा क्या किया कि भारत अपना खोया गर्व प्राप्त करने की दिशा में बढ़ा? मैं नहीं जानता। आधुनिकता के लाभों और नुकसानों से परिचित नेहरू यह तो मानते हैं कि हमारे बुद्धिजीवी अंग्रेज बुद्धिजीवियों की तरह सोचने लगे हैं, जो ठीक नहीं है। लेकिन उन्होंने भारत को केंद्र में रखकर सोचने वाले बुद्धिजिवियों को प्रोत्साहित करने के लिए क्या कुछ किया, मैं यह भी नहीं जानता। पुराना खो गया और नया अपना नहीं है। यह समझने और कहने वाले नेहरु मानते हैं कि 'आज हमारे पास न तो पुराने आदर्श हैं, न नवीन; और हम बिना यह जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर जा रहे हैं। पर इस बार नेहरु ने सोचा और और जो राह उन्होंने अपने लिए चुनी, वह उन्हीं के शब्दों में देखिए - 'मार्क्स और लेनिन की रचनाओं के अध्ययन का मुझ पर गहरा असर पड़ा और उसने इतिहास और मौजूदा ज़माने को एक नई रोशनी में देखने में बड़ी मदद की।' यहाँ हमें यह याद कर लेना चाहिए कि गांधी का 'हिंद स्वराज' उन्हें काफी हद तक बेकाम का लगता था।

भारत के पतन से चिंतित नेहरू भारत के उत्थान लिए क्या सोच रहे थे? 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष' में विपन चंद्रा लिखते हैं, 'समाजवादी भारत के विजन को लोकप्रिय बनाने में जवाहर लाल नेहरू ने बड़ी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका जोर इस बात पर था कि राष्ट्रीय आंदोलन में एक नई समाजवादी-बुनियादी रूप से मार्क्सवादी विचारधारा को स्थान दिया जाए। जब नेहरू यह सब कह और कर रहे थे, ठीक उसी समय उनके बिलकुल समकालीन मैथिलीशरण गुप्त भी इन्हीं चिंताओं से घिरे थे। उनकी प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं -

"हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी?
आओ विचारें आज मिलकर यह समस्याएँ सभी।
'भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ,
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगा जल कहाँ,
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?

उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन, भारत वर्ष है।"

इस कविता में जिन चिंताओं को गुप्त जी प्रकट कर रहे हैं, लगभग ये वही हैं जो नेहरू की हैं। पर जो राह इन चिंताओं से मुक्ति की इस देश ने, नेहरू की छाया में चुनी वह गुप्त जी या गांधी की नहीं मार्क्स की थी, परंपरा की नहीं आधुनिकता की थी।

कोई कह सकता है कि इसमें दिक्कत क्या है?

दिक्कत नहीं दिक्कतें हैं।

वे जिस प्राचीन भारत का गौरवगान कर रहे थे और जहाँ से उसका पतन देख रहे थे, वहाँ से मध्यकाल शुरू होता है। बड़ी ही चालाकी से नेहरु, प्रगतिशील इतिहासकारों, बुद्धिजीवियों और इन्लोरियस एम्पायर में शशि थरूर तक ने यह तो माना कि अंग्रेजी उपनिवेशवाद ने हमारा आर्थिक और मानसिक शोषण किया है, लेकिन मुसलमानों के लगातार हमलों और मुग़ल शासन के दुष्प्रभावों पर कोई बात तक नहीं करता है। वे यह भूल जाते हैं कि सर्वाधिक उदार माना जाने वाला अकबर भी प्रयाग की पंचकोशी परिक्रमा पर रोक लगा देता है। सच तो यह है कि इन आक्रमणों ने, मुगल शासन ने भी हमें हर तरह से तोड़ा था और जो बचाखुचा था उसे उपनिवेशवाद ने निचोड़ लिया था।

आधुनिक भारतीय बुद्धिजीविता के प्रतिनिधियों में से एक और खुद को क्रिटिकल इनसाइडर मानने वाले यू आर अनंतमूर्ति भी 'किस प्रकार की है ये भारतीयता में' सिर्फ अंग्रेजी शासन को ही विदेशी मानते हैं और कहते हैं कि 'उपनिवेशवादी अनुभव के बंधन से मुक्ति पाना एक तरह से पिचाश छुड़ाने की प्रक्रिया है।' परेशानी इस बात की है कि नेहरु से लेकर अनंतमूर्ति तक, सबको भारत की मुक्ति और उत्कर्ष का रास्ता जिस समाजवाद और आधुनिकता में दिखा, वह भी उतना ही पश्चिमी और बाहरी था, जितना अंग्रेज और मुग़ल। उनके उद्देश्यों में फर्क जरूर था। ये विचार भारत के भीतर से विकसित नहीं थे। यह बुद्ध, गोरख, कबीर, गांधी की प्रगतिशीलता या पुरुषोत्तम अग्रवाल की देशज आधुनिकता भी नहीं थी। यह विचारों का एक नया उपनिवेश था।

अनंतमूर्ति भी नेहरू की तरह इस खतरे को समझते हैं कि हम पश्चिम के अनुकरण के कारण अपनी संस्कृति से विमुख होते जा रहे है। पर अपनी संस्कृति के लिए दोनों ही करते कुछ नहीं हैं। राम मनोहर लोहिया भी समाजवादी थे और नेहरू भी। लोहिया ने चित्रकूट में रामायण मेला शुरू किया। कृष्ण से लकर भारत माता तक पर अद्‌भुत निबंध लिखे। नेहरू ने क्या किया? ऐसे लोहिया को जेल भेज दिया।

मैं आधुनिकता और समाजवाद के महत्त्व और सीमाओं से परिचित हूँ पर जिस तरह इन दोनों

बाहरी विचारधाराओं को हम पर आरोपित किया गया और भारत की अपनी प्रगतिशीलता, देशज आधुनिकता या गांधी दर्शन की उपेक्षा की गई, मैं उसके खलाफ हूँ। आखिर यूरोपीय आधुनिकता या मार्क्सवाद भारत के उस गौरव को कैसे वापस ला सकते थे? अमरनाथ जी की 'हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली' देखें। आधुनिकता परंपरागत विचारों, मूल्यों, धार्मिक विश्वासों, रीति रिवाजों को अनावश्यक, अर्थहीन और हानिकारक मानती है, और मार्क्सवाद मनुष्य को सिर्फ एक आर्थिक इकाई। उसकी भी निगाह में ईश्वर, धर्म, परंपरा, मर्यादा, मूल्य कोई मतलब नहीं रखते। उसकी दृष्टि समाज विभाजक और सोच हिंसक है, वह साहित्य और विचार को सिर्फ क्रांति के हथियार के रूप में देखता है। साहित्य और ज्ञान के क्षेत्र में मार्क्सवाद से अनुप्राणित और पार्टी परिचालित प्रगतिशीलता 1936 से इस देश की केंद्रीय विचारधारा रही। हैरानी इस बात की है कि जिस राजनीति को हिंदी पट्टी ने कभी भी महत्त्व नहीं दिया, वह हिंदी साहित्य और बुद्धिजीवियों में छाई रही। इनके आलोचकों, कवियों, रचनाकारों और लेखकों की संख्या और प्रभाव आज भी सर्वाधिक है। इन्होंने बड़े से बड़े लेखकों, कवियों, आलोचकों को वह महत्त्व कभी भी प्राप्त नहीं होने दिया जो उनकी विचारधारा के नहीं थे। उदाहरण के तौर पर, हिंदी के सर्वमान्य सर्वश्रेस्ठ आलोचक रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि हिंदी की केंद्रीय आलोचना दृष्टि के रूप में नहीं अपनाई गई, जो भारतीय थी और जिसका लक्ष्य लोकमंगल था।

1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मलेन में प्रेमचंद के अध्यक्षीय भाषण के महत्त्वपूर्ण कथन 'साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है।' को क्या प्रलेस ने माना? और जब किसी राहुल संकृत्यायन और राम विलास शर्मा ने जरा भी ऐतराज किया, उसे बाहर का रास्ता देखना पड़ा। क्या यह सही नहीं है कि हिंदी में गुटवाद इन लोगों ने बढ़ाया? आँख बंद कर एक स्वर में विरोध किया। अज्ञेय जैसे बड़े साहित्यकार को अंतिम दिन तक यह क्यों कहना पड़ा कि गाली दो पर एक बार पढ़ तो लो? अभिव्यक्ति का जितना गला इन लोगों ने घोंटा किसी ने नहीं घोंटा। साहित्य को यथार्थवादी होना चाहिए और कौन बड़ा साहित्यकार है जो बिना यथार्थवादी होते हुए बड़ा हो गया? लेकिन इनके एक आयामी सामाजिक यथार्थवादी लेखन ने क्या लेखन कर्म को, शिल्प विधान को जटिल नहीं बनाया? हिंदी साहित्य और पाठक के बीच की दूरी बढ़ने में क्या यह भी कारण नहीं है? साहित्य में जिस वर्ग संघर्ष को ये दिखा रहे थे और आँख मूद कर गरीब को नायक और अमीर को खलनायक बनाए जा रहे थे, वह किस सामाजिक रिश्ते को जन्म देता? क्रांति तो हुई नहीं, लेकिन एक ही डंडे से सबको हाँकने और आंकने की प्रवृत्ति ने बहुत मन खिन्न किए। प्रगतिशील साहित्य की ही तरह उससे प्रेरित स्त्री और दलित विमर्श ने बहुत कुछ अच्छा किया। लेकिन जिस तरह से किया उसका नुकसान यह हुआ कि स्त्री और पुरुष, दलित और सवर्ण आमने सामने खड़े हो गए। आमने-सामने खड़े लोग एक दूसरे से लड़ तो सकते हैं, पर साथ

चल नहीं सकते। ये लोग भूल गए कि एंगल्स के बुर्जुआ पिता का पैसा न होता तो मार्क्स लंदन की ठंड में जम गए होते। लेनिन को टॉलस्टॉय हमेशा याद रहे पर इन्हें तुलसीदास भूल गए। ये लोग भी यह भी भूल गए कि डॉ अम्बेडकर अम्बेडकर क्यों कहलाते हैं? कि मनु स्मृति को उस सभा में डॉ अम्बेडकर से पहले एक ब्राह्मण शिक्षक ने जलाया था। ये लोग यह भी न समझ सके कि लाख गरीबी और कठिनाइयों के बावजूद होरी और हलकू आत्महत्या क्यों नहीं करते हैं? और आज सारी सरकारों, जन प्रतिनिधियों के बावजूद रोज कर रहे हैं। प्रगतिशील हों या विमर्शवादी, उन्हें एक संतुलन रखना था। आँखें बंदकर एक तुला में सबको रखने के भाव ने बहुत हानि पहुँचाई है।

आज़ादी के बाद की हिंदी का लगभग दो तिहाई साहित्य, आलोचना कर्म और साहित्यिक पत्रकारिता प्रगतिशील है। ये पत्रिकाएँ, रचनाकार, आलोचक, उपन्यास, कहानियाँ और कविताएँ भारत की जिस छवि को गढ़ते हैं, वह पाठक के मन में भारत की कैसी तस्वीर बनाता है? राग दरबारी, मैला आँचल, गोदान, झूठा सच, अंधरे में, पटकथा, और अंत में प्रार्थना सच बोलते हैं और बोलना भी चाहिए। पर भारत क्या सिर्फ राग दरबारी का शिवपाल गंज है? क्या वह सिर्फ पूर्णिया का मैला आँचल है? क्या तमस और झूठा सच का सच ही भारत का सच है? होरी निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है पर क्या सिर्फ होरी ही भारत के किसान का प्रतीक है? और क्या हम सिर्फ 'अँधेरे में' हैं?

अंधेरों की तो बहुत बात हुई और होनी भी चाहिए। पर बात निराला के उस भाव की भी होनी थी जो कहता है 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर।' बात असाध्यवीणा की भी होनी थी कि अज्ञेय किस वीणा और किस परंपरा की बात कर रहे हैं? बात राम के भींगते मुकुट, भारत एक प्रतिश्रुति और वाजश्रवा के बहाने की भी होनी थी। कितनी बात हुई अँधा युग में गूँजती मर्यादा पर? 'राष्ट्रगीत में भला कौन वह भारत भाग्य विधाता है? फटा सुथन्ना पहने जिसका गुन हरचरना गाता है रघुवीर सहाय की ये पंक्तियाँ सच कहती हैं, पर क्या सिर्फ यही सच है!

आंशिक सत्य को अंतिम सत्य की तरह प्रस्तुत और साबित करने का जो काम प्रगतिशीलों ने किया, भारत की जो छवि साहित्य से लेकर कला सिनेमा तक ने प्रस्तुत की, वह यथार्थ तो थी, पर एकांगी थी। इसके साथ साथ ऐसे भी साहित्य और आलोचना की प्रतिष्ठा होनी चाहिए थी जो मानवीय और भारतीय थे। वाल्मीकि और भवभूति की काव्य दृष्टि, रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि, प्रसाद, अज्ञेय और निर्मल वर्मा की सांस्कृतिक दृष्टि को भी केंद्र में रखना था। भारत को देखने, समझने और मूल्यांकित करने की दो समानांतर दृष्टियाँ एक हृदय और एक मस्तिष्क के साथ, हमारी देह की तरह क्यों नहीं रह सकती थीं? पर ऐसा न हुआ। नतीजतन एक टूटा फूटा समाज साहित्य के दर्पण में अपना और भी क्षत विक्षत चेहरा लगातार देखता रहा। उसे उम्मीदों भरा चेहरा नहीं दिखा।

फिर कहाँ से आता उसके भीतर गौरव, अपने देश, समाज, भाषा, साहित्य और साहित्यकार के प्रति प्रेम?

प्रश्न तो यह भी उठेगा कि हमने पाठक की चिंता नहीं की। दरअसल हमने उसे इस लायक ही नहीं समझा कि यह सोचें कि वह क्या चाहता है। हमने कथ्य से लेकर शिल्प तक सब उस पर थोप से दिए। आज साहित्य और पाठक के बीच में जो दूरी है। उसके कुछ कारण यहाँ भी हैं। इसीलिए आज का बड़ा से बड़ा साहित्यकार भी हिंदी समाज में वह प्रभाव और हैसियत नहीं रखता है जो किसी ज़माने में किसी गाँव के स्कूल का एक हेड मास्टर रखा करता था। या कि गांधी को भी सुनने पर मजबूर कर देने वाला कोई निराला और उग्र रखा करता था, और रही बात इस यूरोपीय आधुनिकता की, तो सच तो यह है कि इसने हमें दिया बहुत कम है, लिया बहुत है। क्या कभी आप ने सोचा है कि जब तक गंगा मैय्या थी निर्मल थी पर जब सिर्फ एक नदी मान ली गई तो उसका क्या हाल हो गया? जब तक वृक्ष देवता थे तब तक पर्यावरण का कोई संकट न था पर जब वे मात्र पेड़ हो गए तब हवा कितनी जहरीली हो गई। इस आधुनिकता का ही परिणाम है कि प्राचीन भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियों की बात करने पर ये तथाकथित आधुनिक हँसते हैं। यह आत्महीनता दयनीय है। आखिर ऐसा क्या था उस पुराने भारत में कि ह्वेनसांग से लेकर सिकंदर तक और कोलम्बस से लेकर वास्कोडिगामा तक सबको उसी की तलाश थी। कोई तो बात रही होगी उस भारत में जिसके दो महानतम ग्रंथ रामायण और महाभारत अवर्णों ने लिखे और सवर्णों ने अपने माथे का मुकुट बना लिया। प्रेमचंद ने 1936 के उसी भाषण में कहा था- हमें हुश्न का मयार बदलना होगा। आज मैं अपने उसी पूर्वज की तर्ज पर आप से कहना चाहता हूँ कि हमें अब अपने सोचने का मयार और ढंग बदलना होगा। और वह ढंग हर रंग में भारतीय होना चाहिए। और अगर ऐसा न हुआ तो-

न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्तान वालों
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दस्तानों में।

प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, गचिबाउली, हैदराबाद - 500046

विरासत

होली

कैसी होरी खिलाई,
आग तन-मन में लगाई।
पानी की बूँदी से पिंड प्रकट
कियो सुंदर रूप बनाई।
पेट अधम के कारण मोहन घर-घर नाच नचाई
तबौ नहिं हबस बुझाई।
भूँजी भाँग नहीं घर भीतर, का पहिनी का खाई
टिकस पिया मोरी लाल का रखल्यो,
ऐसे बनो न कसाई।।

- भारतेंदु हरिश्चंद्र

व्यंग्य

निमंत्रण-पत्र न बुलाने का

- सीताराम गुप्ता

कभी आपको किसी शादी-विवाह अथवा अन्य किसी समारोह में न आने का निमंत्रण-पत्र मिला है? न आने का निमंत्रण-पत्र? हाँ, न आने का निमंत्रण-पत्र। ये कैसे हो सकता है कि न बुलाने के लिए भी कोई किसी को निमंत्रण-पत्र भेजे? हो सकता है और ख़ूब हो सकता है। हो सकता है आपको ऐसे निमंत्रण-पत्र न मिले हों लेकिन हमें तो न जाने कितनी बार न बुलाने के निमंत्रण मिल चुके हैं। तो क्या निमंत्रण-पत्र में लिखा होता है कि आपको नहीं आना है? नहीं बुलाना हो तो भी यह बात कैसे लिखी जा सकती है और लिखने की ज़रूरत भी क्या है? बस तरीक़ा आना चाहिए निमंत्रण-पत्र भेजकर न बुलाने का। ये एक कला है और इस कला में सभी पारंगत नहीं होते। अन्य कलाओं की तरह कुछ ख़ास लोग ही निष्णात होते हैं इस कला में भी। वे आपको विधिवत निमंत्रण-पत्र भेजेंगे और आप चाहते हुए भी बिलकुल नहीं जा पाएँगे इस बात की गारंटी है।

आप नहीं जा पाएँगे और नहीं जा पाने के कारण उलाहने भी सुनेंगे। यही तो ख़ास बात होती है ऐसे न बुलाने वाले निमंत्रण-पत्रों की। ऐसे निमंत्रण-पत्र भेजने वाला बाद में जब भी कहीं मिलेगा आपसे न आने की शिकायत करेगा और आपको अपनी सफ़ाई तक पेश करने का मौक़ा नहीं देगा। कहेगा, भाई बच्चों को आशीर्वाद देने भी नहीं पहुँचे आप? कम से कम आपसे तो ऐसी उम्मीद नहीं थी। बड़े बेटे और मझली बेटी की शादी में भी नहीं आए थे? हमारे कौन से दस-बीस बच्चे हैं जो आप आशीर्वाद देते-देते थक गए। हमसे क्या ग़लती हो गई बड़े भाई? कोई ग़लती हो गई है तो बता दो, अभी माफ़ी माँग लेता हूँ सबके सामने। या आपने क़सम खा रखी है कि हमारी देहली पर क़दम न रखने की? "भाई बात ऐसी है कि..., " आप कुछ बोलना चाहेंगे तो बीच में ही आपकी बात काटकर कहेगा, "हाँ, बोलिए बड़े भाई पर यह मत कहना कि चिट्ठी नहीं मिली।"

हाँ ये पचास-साठ साल पुराने अचूक नुस्ख़े हैं निमंत्रण-पत्र भेजकर न बुलाने के जब हाथ से लिखकर और उन पर हलदी के छींटे मारकर डाक से शादी की चिट्ठियाँ भेजी जाती थीं। सभी भाई-बंधुओं और रिश्तेदारों को भेजी जाती थीं शादी की चिट्ठियाँ। जिनको नहीं बुलाना होता उनको भी लेकिन कुछ इस तरह से कि शादी के ऐन दिन या उसके बाद ही मिले। ऐसे में आप पहुँच कर दिखलाइए शादी में कैसे पहुँचेंगे? आपको निमंत्रण भी मिला और चाहकर भी नहीं पहुँच पाए शादी में। यही है न बुलाने का निमंत्रण। फिर भी भाई साहब शिकायत कर रहे हैं कि आप पहुँचे नहीं। आप कह रहे हैं कि चिट्ठी देर से मिली इसलिए पहुँचना संभव नहीं था। इस पर भाई साहब कहते हैं, छोड़िए भाई साहब ये सब बहाने पुराने

हो चुके हैं। एक आपको ही समय पर कार्ड नहीं मिला और बाक़ी सब लोगों को मिल गए और सब आ भी गए। बहस करना बेकार है क्योंकि ये निमंत्रण-पत्र था ही न बुलाने के लिए।

अगर आप समझते हैं कि मोबाइल और इंटरनेट के दौर में न बुलाने के निमंत्रण-पत्र नहीं भेजे जा सकते तो आप मुग़ालते में हैं। आपको वाट्सऐप पर निमंत्रण-पत्र भी भेजेंगे और फोन भी करेंगे लेकिन फिर भी आप नहीं जा पाएँगे इस बात की गारंटी है। कलाकार हर दौर में कलाकारी करने में निपुण होते हैं। अभी कुछ दिन पहले की ही बात है। वाट्सऐप पर एक निमंत्रण-पत्र मिला। अच्छा लगा। ये एक बड़े बजट की शादी थी जो एक बड़े रिजोर्ट में होनी थी। ऐसी बड़ी शादियों में जाने के मोक़े कम ही मिलते हैं इसलिए प्रसन्नता भी कम नहीं हुई। वाट्सऐप पर निमंत्रण-पत्र के बाद फोन भी आ गया। जी बहुत-बहुत बधाई ! शुभकामनाएँ ! सबको आना है और वहीं पर बधाई देना। शादी का दिन भी आ पहुँचा। पता देखने के लिए वाट्सऐप खोलकर निमंत्रण-पत्र निकाला लेकिन निमंत्रण-पत्र पर रिजोर्ट का नाम तो लिखा था पर पता नहीं दिया गया था। बहुत देर तक सोचता रहा कि यह रिजोर्ट कहाँ पर होगा। बहुत देर तक माथा-पच्ची करने के बाद समझ में आया, 'अरे ! यह तो न बुलाने का निमंत्रण-पत्र है।'

ए.डी. 106 सी., पीतमपुरा, दिल्ली - 110 034

हिंदी अपना भविष्य किसी से दान में नहीं चाहती। वह तो उसकी गती का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए। जिस नियम से नदी नदी की गती रोकने के लिए शिला नहीं बन सकती, उस नियम से हिंदी भी किसी सहयोगिनी का पथ अवरुद्ध नहीं कर सकती। यह आकस्मिक संयोग न होकर भारतीय आत्मा की सहज चेतना ही है, जिसके कारण हिंदी के भावी कर्तव्य को जिन्होंने पहले पहचाना वे हिंदी भाषा-भाषी नहीं थे।

(महादेवी वर्मा)

हार्दिक अभिनंदन

मुंबई स्थित सुरभि साहित्यिक संस्थान द्वारा अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित कार्यक्रम में राष्ट्रहित में किए गए सराहनीय उत्कृष्ट कार्यों एवं प्राप्त उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद की एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल को 'ओजस्विनी नारी सम्मान - 2023' प्रदान किया गया है।

विरासत : ललित निबंध का अंश

मेहमानों की दुनिया

- रामअवध शास्त्री

मेहमानों की दुनिया बड़ी निराली होती है। ऐसी दुनिया में गाहे-बगाहे ऐसी घटनाएँ घट जाया करती हैं जिन्हें स्मरण कर हमारे अधरों पर स्मिति की रेखाएँ उभर आती हैं और कभी-कभी अकेले में बैठे-बैठे हम ठहाके लगाने के लिए विवश हो जाते हैं। जब कभी ऐसी स्थिति आती है तब हम अतीत की दुनिया में तैरते होते हैं और तैरते-तैरते वर्तमान से टकरा जाते हैं जो झुंझला उठते हैं। उस समय हम नहीं चाहते कि कोई हमारे अतीत रस में व्यवधान डाले और हमसे हमारा आनंद छीने। और यदि कोई व्यवधान उपस्थित करता है तो हम उसे फूटी आँख देखना पसंद नहीं करते। यह स्वाभाविक है। कोई भी व्यक्ति अपने आनंद की स्थिति को जाया नहीं करना चाहता किंतु जब इसके विपरीत की स्थिति होती है और हम विवाद की स्थिति में होते हैं तो अपने समूचे भाव जगत को किसी दूसरे के हवाले करने के लिए उद्यत रहते हैं। हमारी यही सोच हमारे दुखों का कारण है। अगर हमारी समझ में आ जाए कि किसी चीज का सुख हमारा है तो उसका दुख भी हमारा ही होगा तो सारी स्थिति ही बदल जाय, पर मनुष्य कहाँ मानने वाला है। अगर उसका उल्लू सीधा होता है तो वह जान कर भी अनजान बना रहता है। ऐसे अनजानियों को समझाना टेढ़ी खीर है। आजकल ऐसे अनजानियों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।

मेहमानों के लिए इन दिनों अतिथि शब्द का प्रयोग होने लगा है। वैसे पहले भी इसका इसी अर्थ में प्रयोग होता था किंतु हर मेहमान के लिए अतिथि शब्द का प्रयोग नहीं होता था। पुराने जमाने में यह शब्द विशेषकर उस संन्यासी के लिए प्रयुक्त होता या जो कहीं एक रात से अधिक नही ठहरता था। किंतु आजकल ऐसी स्थिति नहीं है। अब हम मेहमान अतिथि हैं और हर अतिथि मेहमान है। विश्वास न हो तो उठा लीजिए उस निमंत्रण पत्र को जो अभी आपके पास आया है। उसमें लिखा है न कि समारोह के मुख्य अतिथि होंगे....। अब आप ही बताइए क्या ऐसा व्यक्ति अतिथि हो सकता है जिसके आने की तिथि ही नहीं समय भी निश्चित है? जानता हूँ आप कहना चाह रहे हैं कि नहीं, ऐसा व्यक्ति अतिथि नहीं हो सकता। अतिथि तो वह होता है जिसके आने की कोई तिथि निश्चित न हो और जो अचानक आकर हमारे सामने उपस्थित हो जए और हमारे मुँह से निकल पड़े, अरे आप, कब आए! सब खैरियत तो है न!

किंतु दुर्भाग्यवश आजकल हम सभी ऐसे अभ्यागतों को भी अतिथि कहने के लिए विवश हो गए हैं जो अतिथि विशेषण के अधिकारी नहीं हैं। भला अब किसके पास इतना समय रह गया है कि वह ठोक-बजाकर शब्दों का प्रयोग करे। संस्कृत के पंडितों का तो जमाना रहा नहीं जिसमें 'ह्रस्व' मात्रा के लाभ की स्थिति में पुत्र प्राप्ति का उत्सव मनाया था। अब तो चला-चली का जमाना है। जो चल जाय वही ठीक है। 'अतिथि' तिथि वाले के लिए चले या 'तिथि पति' के लिए चले, कोई फर्क नहीं पड़ता। यही ठीक है। ठीक

वही है जो सबको ठीक लगे। जनतंत्र का जमाना है। अखिर बहुमत भी तो कोई चीज है। उसकी ताकत भी तो देखनी चाहिए। और फिर तिथि वाले अतिथि से इस तरह का कोई खतरा भी नहीं होता जिस प्रकार का खतरा प्रायः अतिथियों से हो जाया करता है अथवा हो जाने की संभावना बनी रहती है। यदि प्राचीन भारत में अतिथि शब्द का प्रयोग आज के संदर्भ में होता रहता तो बेचारी शकुंतला को दुर्वासा के उस दारुण शाप का सामना नहीं करना पड़ता जिसके कारण उसे अपने दुष्यंत से न तो अपमानित होना पड़ता और न महाराज दुष्यंत को पश्चाताप की अग्नि में झुलसना पड़ता। हमारी पुरानी पोथियों में अतिथि को देवता स्वरूप बताया गया है। उस व्यक्ति का धन्य भाग्य जिसके घर कोई अतिथि आए, पर उसका भाग्य तभी तक धन्य है जब तक अतिथि की मर्यादाओं का पालन करता है। अतिथि की सबसे बड़ी मर्यादा यही है कि वह अपने आतिथेय के मन को पहचाने और उसी के अनुरूप उसे आतिथेय का अवसर प्रदान करे। जब कोई अतिथि जोंक की तरह चिपक जाता है और अपने आतिथेय के निजी जीवन में ताकने-झाँकने लगता है तो वह बोझ बन जाता है। बोझ बड़ा दुखदायी होता है। इस कारण उसे कोई आसानी से नहीं ढ़ोना चाहता। फिर भी लोगों को ढ़ोना पड़ता है और जब ढ़ोते-ढ़ोते थक जाते हैं तो उसे कीच-कंदकों की तरह फेंक देते हैं। एक बार निराला जी को भी ऐसे बोझ को फेंकना पड़ गया था।

बात उस समय का है जब महाकवि इलाहाबाद में जमे हुए थे। किसी दिन उनके यहाँ छायावादी कविता के मान्य समीक्षक शांतिप्रिय द्विवेदी अतिथि के रूप में पधारे। निराला जी का भाग्य धन्य हो उठा। उन्होंने उनका भरपूर सम्मान किया। उनके लिए अपने हाथ से भोजन पकाया और आदरपूर्वक भोजन के लिए आमंत्रित किया। किंतु जब भोजन करते समय द्विवेदी जी अतिथि की मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुए भोजन में नुक्स निकालने लगे तो महाकवि का क्रोध भड़क उठा और चूल्हे में जल रही लकड़ी को उठाकर कहा चुपचाप भोजन करते हैं कि दो-चार लकड़ी जमाऊँ। बेचारे अतिथि देवता हतप्रभ रह गए। वे निराला जी के क्रोध से परिचित थे। सो जान बचाने के लिए वहाँ से भाग खड़े हुए। वे आगे-आगे और निराला जी पीछे-पीछे। भागते-भागते द्विवेदी जी महादेवी वर्मा के घर में घुस गए और उनसे निराला से बचाने का आग्रह किया। महादेवी जी ने कहा, "अब आप डरिए मत, यहाँ निराला जी आने वाले नहीं हैं। आखिर बात क्या है कि निराला जी आपको मारने के लिए दौड़ रहे हैं।" द्विवेदी जी ने अब तक के सारे प्रकरण को बता दिया तो महादेवी जी ने कहा, "आपको सोचना चाहिए था कि निराला जी ने जिस प्रेमभाव से आपके लिए भोजन पकाया था और एक आप हैं कि उनके द्वारा पकाए गए भोजन में नुक्स निकालने लगे। आपको रहीमदास का वह दोहा भी याद नहीं रहा जिसमें उन्होंने भोजन की सामग्री की उपेक्षा करके भोजन परोसने के भाव पर विशेष बल दिया है। आप तो भाव को ठुकराकर भोजन सामग्री पर ही केंद्रित हो गए। यह कितनी बुरी बात है। इसके लिए तो निराला जी से क्षमा माँगनी चाहिए।" द्विवेदी जी को जब आपकी भूल का बोध हुआ तो उनकी आँखें सजल हो गईं।

परीक्षापयोगी

वस्तुनिष्ठ प्रश्न - हिंदी साहित्य का इतिहास

रचना	रचनाकार
दोहा कोश	सरहपा
चर्यापद	शबरपा
पउम चरिउ	स्वयंभू
शब्दानुशासन	हेमचंद्र
पृथ्वीराज रासो	चंदबरदाई
खुमाण रासो	दलपति विजय
बीसलदेव रासो	नरपति नालह
भरतेश्वरबाहुबली रास	शालीभद्र सूरी
मृगावती	कुतुबन
मधुमालती	मंझन
ढोला मारूरा दूहा	कल्लोल कवि
पद्मावत	जायसी
भक्तमाल	नाभादास
सूरसागर	सूरदास
भ्रमर गीत	सूरदास
छत्रशाल दशक	भूषण
रामचंद्रिका	केशवदास
अंधेर नागरी	भारतेंदु हरिश्चंद्र
जार्ज वंदना	श्रीधर पाठक
प्रियप्रवास	अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध
मिलन	रामनरेश त्रिपाठी
झरना	जयशंकर प्रसाद
पल्लव	सुमित्रानंदन पंत
रश्मि	महादेवी वर्मा

रचना	रचनाकार
राम की शक्ति पूजा	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
मधुशाला	हरिवंशराय बच्चन
कुरुक्षेत्र	रामधारी सिंह दिनकर
सतरंगे पंखों वाली	नागार्जुन
चाँद का मुँह टेढ़ा है	गजानन माधव मुक्तिबोध
असाध्य वीणा	अज्ञेय
अमन का राग	शमशेर बहादुर सिंह
संशय की एक रात	नरेश मेहता
मुरदों का टीला	रांगेय राघव
फाँस	संजीव
निर्मला	प्रेमचंद
अर्धनारीश्वर	विष्णु प्रभाकर
काला पहाड़	भगवान दास मोरवाल
राग दरबारी	श्रीलाल शुक्ल
हिंदी साहित्य की भूमिका	हजारी प्रसाद द्विवेदी
तमस	भीष्म साहनी
चित्रलेखा	भगवती चरण वर्मा
स्कंदगुप्त	जयशंकर प्रसाद
साकेत	मैथिलीशरण गुप्त
परमात्मा का कुत्ता	मोहन राकेश
भोलाराम का जीव	हरिशंकर परसाई
उसने कहा था	चंद्रधर शर्मा गुलेरी
त्याग पत्र	जैनेंद्र

संकलन : गुर्रमकोंडा नीरजा

कविता पाठ प्रतियोगिता 'काव्य लहरी' संपन्न

हैदराबाद, 4 मार्च 2023। उच्च शिक्षा और शोध संस्थान एवं शिक्षा महाविद्यालय, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद ने संयुक्त रूप से कविता पाठ प्रतियोगिता 'काव्य लहरी' का आयोजन किया। कार्यक्रम की अध्यक्ष सचिव एवं संपर्क अधिकारी (प्रभारी) ए. जानकी ने हर्ष व्यक्त किया कि नगरद्वय के महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों से बड़ी संख्या में प्रतिभागी इस प्रतियोगिता में भाग ले रहे हैं। उन्होंने सभी को शुभकामनाएँ दी। पीजी और बीएड विभागों को बधाई दी क्योंकि पाठ सहगामी क्रियाओं को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है जो छात्र के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य है। इस समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. डी. विद्याधर (प्राचार्य, विवेक वर्धिनि महाविद्यालय, हैदराबाद) ने सबकी प्रशंसा करते हुए कहा कि ऐसी प्रतियोगिताओं के माध्यम से युवा पीढ़ी की प्रतिभा को निखारा जा सकता है।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना के प्रबंध निधिपालक शेख मोहम्मद खासिम ने युवा पीढ़ी को प्रोत्साहित किया और कहा कि सृजनात्मकता को विकसित करना अनिवार्य है। उन्होंने सभी प्रतिभागियों को शुभकामनाएँ देते हुए एक सकारात्मक वातावरण कायम रखने के लिए कहा। पीजी के विभागाध्यक्ष प्रो. संजय एल मादार ने सबका स्वागत किया, बीएड महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. सी. एन. मुगुटकर ने अतिथि का परिचय दिया। इस अवसर पर पीजी विभागाध्यक्ष प्रो. संजय एल. मादार तथा एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. साहिराबानो बी बोरगल की पुस्तकों का लोकार्पण हुआ। प्रतियोगिताओं में प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान किया गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. ए. जी. श्रीराम ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन एकाम्बरेश्वर ने किया।

वर्तमान हिंदी साहित्य : वैचारिक स्थिति पर वेब संगोष्ठी संपन्न

वारणानगर, कोल्हापुर। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा की अध्यक्ष डॉ. बीना शर्मा की अध्यक्षता में 'वर्तमान हिंदी साहित्यः वैचारिक स्थिति' विषयक अंतरराष्ट्रीय वेब संगोष्ठी संपन्न हुई। यशवंतराव चव्हाण वारणा महाविद्यालय, आंतरिक गुणवत्ता आश्वासन कक्ष, हिंदी विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, शिवाजी विश्वविद्यालय, हिंदी संकाय परिषद के तत्वावधान में संपन्न इस संगोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित अंतरराष्ट्रीय पत्रिका 'विश्वा' (अमेरिका) के संपादक प्रख्यात व्यंग्यकार रमेश जोशी ने कहा कि आजकल साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सच्चाइयों को प्रस्तुत करने वाले साहित्यकार बहुत कम देखने को मिल रहे हैं। आज अनेक देशों में प्राचीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन किया जा रहा है। उन्होंने यह भी राय व्यक्त की कि लेखकों और पत्रकारों की नई पीढ़ी को भारतीय संस्कृति के संरक्षण हेतु कटिबद्ध होना चाहिए।

प्रो. विवेकमणि त्रिपाठी (फॉरेन लैंग्वेज यूनिवर्सिटी, चीन) ने कहा कि चीन में आज भी प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य का अध्ययन हो रहा है तो प्रो. अर्जुन चव्हाण ने कहा कि रामायण और महाभारत मूल्यों को स्थापित करने वाले ग्रंथ हैं। डॉ. प्रकाश चिकुर्डेकर ने सबका स्वागत करते हुए कहा कि भारतीय साहित्य और संस्कृति की समृद्ध परंपरा है। अपनी अध्यक्षीय टिप्पणी में डॉ. बीना शर्मा ने कहा कि भारतीय संस्कृति, साहित्य और विचारधारा को विश्व के सामने एक नए तरीके से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। इस अवसर पर डॉ. एन. लक्ष्मी (पोर्ट ब्लैर), डॉ. एस.एस. खोत, प्रो. संतोष जांभाले, डॉ. प्रीति शिंदे पाटिल, डॉ. विनय कोरे सावकर, डॉ. वसंती रासम आदि ने अपने विचार व्यक्त किए। इस सम्मेलन में 770 से अधिक हिंदी प्रेमी और शोधार्थियों ने भाग लिया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. सुषमा देवी (हैदराबाद) ने किया। प्रारंभ में स्वप्नाली चौगुले और वैष्णवी मदाने ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की तथा कार्यक्रम का समापन नाजिया मुल्ला द्वारा प्रस्तुत वंदे मातरम से हुआ।

Press & Registration of Books Registration of Newspapers(Central) Rules,

Form IV (See Rule 8)

Statement about ownership and other particulars about "Sravanthi"

1.	Place of Publication	:	T.Nagar, Chennai-600 017
2.	Periodicity of its Publication	:	Monthly
3.	Printer's Name	:	**G. SELVARAJAN**
	Nationality	:	Indian
	Address	:	6-2-959, D.B. Hindi Prachar Sabha, AP & TS Khairatabad, Hyderabad-500 004.
4.	Publisher's Name	:	**G. SELVARAJAN**
	Nationality	:	Indian
	Address	:	6-2-959, D.B. Hindi Prachar Sabha, AP & TS Khairatabad, Hyderabad-500 004.
5.	Editor's Name	:	**G. SELVARAJAN**
	Nationality	:	Indian
	Address	:	6-2-959, D.B. Hindi Prachar Sabha, AP & TS Khairatabad, Hyderabad-500 004.
6.	Names and address of individuals who own the news paper and Partners or Shareholders	:	Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, AP & TS 6-2-959, Khairatabad, Hyderabad-500 004

I, G. SELVARAJAN hereby declare that the particulars give above are true to the best of my knowledge and belief.

Date : 18.03.2023

G. SELVARAJAN
Signature of the Publisher

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, आंध्र तथा तेलंगाना
महात्मा गांधी अंग्रेज़ी माध्यम हाई स्कूल, विजयवाडा : वार्षिकोत्सव 13 मार्च, 2023

ISSN 2582-0885

SRAVANTHI

RNI3108/58

March 2023

Date of Publication - 18th of every month

Posted at Patrika Channel on 20 March, 2023

Registered News Paper

To

.....

.....

.....

If not delivered, please return to:

Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha – Andhra Pradesh & Telangana

(Provincial Branch of Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras)

(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)

P.B. No.23, Khairatabad, Hyderabad - 500 004.

अनुशासन में रखने का प्रशिक्षण बचपन में और घर से ही शुरू होना चाहिए।

- महात्मा गांधी

Edited, Printed and Published by G. Selvarajan on behalf of the D.B. Hindi Prachar Sabha - Andhra Pradesh & Telangana Khairatabad, Hyderabad - 500 004 and Printed at Hindi Prachar Press, T. Nagar, Chennai - 600 017.